प्राथमिक-शिक्षण की

बुन्देली परिपाटी

महेश कुमार मिश्र 'मधुकर'

प्राथमिक-शिक्षण की

बुन्देली परिपाटी

महेश कुमार मिश्र `मधुकर'

सम्पादक
डॉ. कपिल तिवारी

सहायक सम्पादक
अशोक मिश्र

आदिवासी लोक कला अकादमी
मध्यप्रदेश संस्कृति परिषद्
भोपाल का प्रकाशन

प्रकाशक	– निदेशक आदिवासी लोक कला अकादमी मध्यप्रदेश संस्कृति परिषद् मुल्ला रमूज़ी संस्कृति भवन, आधार तल, बाणगंगा, भोपाल मध्यप्रदेश–462003 फोन–2551878, 2760668
प्रकाशन	– वर्ष 2005
मूल्य	– 20/– (रूपये बीस केवल)
स्वत्वाधिकार	– आदिवासी लोक कला अकादमी, मध्यप्रदेश संस्कृति परिषद्, भोपाल
शब्दांकन	– आदिवासी लोक कला अकादमी, मध्यप्रदेश संस्कृति परिषद्, भोपाल
मुद्रण	– मल्टी ऑफसेट, भोपाल

- पुस्तिका से संबंधित समस्त विवादों का न्यायालयीन कार्यक्षेत्र भोपाल होगा।
- पुस्तक में छपी सामग्री के किसी भी माध्यम द्वारा उपयोग के पूर्व अकादमी से अनुमति लेना आवश्यक होगी।
- पुस्तिका में प्रकाशित समस्त सामग्री संकलनकर्त्ता, लेखक की अपनी है, आवश्यक नहीं है कि अकादमी इससे सहमत हो।

मध्यप्रदेश, राजस्थान, उत्तरप्रदेश और बिहार आदि हिन्दी भाषी प्रदेशों की मौखिक लोक साहित्य परम्परा के संकलन, पाठ सम्पादन, अनुवाद और प्रकाशन कार्य की लम्बी अवधि में, यह स्पष्ट होने लगा था कि, वाचिक परम्परा का अर्थ केवल मौखिक साहित्य परम्परा ही नहीं, बल्कि 'जीवन संज्ञान' के सभी क्षेत्रों से जुड़ी है और उसका साहित्य की वाचिकता से गहरा सम्बन्ध है। साहित्य की परम्परा के अलावा नृत्य, नाट्य, संगीत, चित्र और शिल्प तथा स्थापत्य, मौसम-कृषि, औषधीय ज्ञान और खगोल तथा शिक्षा के रूप भी इस 'वाचिकता' के विस्तार में शामिल हैं।

भारतीय परम्परा, विशेष रूप से लोक परम्परा का अध्ययन करते वाचिक संज्ञान के जीवन विस्तार के बहुविध पक्षों को अपनी दृष्टि में रखना और उनका सम्यक् मूल्यांकन करना आवश्यक है, तभी हम समग्रता में वाचिक परम्परा को समझ सकते हैं। बोले गये शब्द की परम्परा में लोकजीवन में जो ज्ञान और ज्ञान पद्धतियाँ रहीं हैं, वे स्मरण और स्मृति के आधार पर एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तांतरित होती हैं और उसकी प्रणालियाँ जीवन कर्म की व्यावहारिक प्रणाली से जुड़ी रही हैं।

अन्य क्षेत्रों के अलावा भाषा और अंक अथवा व्यावहारिक गणित की शिक्षा पद्धति, एक-डेढ़ सदी पहिले तक 'पाटियों' के रूप में प्रचलित थी, जो आधारभूत या बुनियादी शिक्षा का वाचिक ढंग रहा है। शिक्षा में 'प्रणाली' बहुत महत्त्वपूर्ण है। पश्चिमी ढंग की आधुनिक शिक्षा की एक विशेष 'प्रणाली' है, और अब सर्वत्र यही प्रचलित है, किन्तु हमें अपनी परम्परा में अंक और भाषा की शिक्षा की देशज प्रणाली की परम्परा को भी देखना चाहिये क्योंकि उसे लोग अब पूरी तरह विस्मृत कर चुके हैं। आधारभूत शिक्षा के लिए वाचिक परम्परा से जुड़ी 'पाटियों' की पद्धति आखिर क्या थी? उसका रूप क्या था? और किस प्रकार वह प्रणाली भाषा और गणित में पीढ़ियों को दीक्षित करती थी, यह समझना महत्त्वपूर्ण होगा।

आदिवासी लोक कला अकादेमी ने वाचिक परम्परा के बहुत से पक्षों पर कार्य किया है इसमें एक सार्थक विस्तार शिक्षा की पद्धति के वाचिक रूपों के शामिल करने से भी हो रहा है। परम्परा के लोक आधार को समझने, देशज ज्ञान प्रणालियों की ओर, बहुत समय बाद इस देश के अनेक अध्येताओं का ध्यान आकर्षित हुआ है, बहुत संभव है कोई अध्येता शिक्षा की पद्धतियों की देशज प्रणालियों को खोजना चाहे तो 'पाटियों' की यह शिक्षा पद्धति उनकी सहायता कर सकती है क्योंकि यह हमारी परम्परा की वाचिकता का एक आधार रही है।

श्री महेश कुमार मिश्र 'मधुकर' मूलत: शास्त्रीय और लोक संगीत और प्रसंगत: मौखिक प्रणालियों के एक श्रेष्ठ बुन्देली अध्येता हैं और उन्होंने अकादेमी के इस प्रकल्प में पहिले 'बुन्देलखण्ड की मृदंग वादन परम्परा' तथा वृक्षों से सम्बन्धित पौराणिक साक्ष्यों के संकलन 'वृक्ष पुराण' के रूप में महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। अब उन्होंने बुन्देलखण्ड में प्रचलित 'पाटियों' की शिक्षा पर इस पुस्तक का लेखन किया है। यह महत्त्वपूर्ण और सुन्दर कार्य है। अकादेमी की ओर से उन्हें बहुत बधाई, उनका आभार।

लोक और लोक की परम्परा में उत्सुक अध्येताओं और पाठकों को यह पुस्तक प्रिय होगी, हमें ऐसी आशा है।

-कपिल तिवारी

अनुक्रम-

प्राक्कथन / 9
बुन्देली-परिपाटी / 12
पाटियों की शोध यात्रा / 15
पाटियों का इतिहास / 21
पाटियों के लोप का कारण / 25
पाटियों के पठन-पाठन की विधि / 27
बुन्देली-वर्ण लिपि / 31
पाटियों का मूल-पाठ / 33
ओलम् / 41
चरनाइके / 56
श्री गोपाल जू..... / 64
तेत्तीस अक्षरी / 67
चौंत्तीस का मूल पाठ / 71
चरनाइके-प्रासंगिकता व उपयोग / 75
तेरा लेखे / 76
लेखों की अंक-लिपि / 78
तेरह लेखों की सीमा व कलेवर / 79
कातन्त्र व्याकरण / 105
लेखन सामग्री / 110
सन्दर्भ / 112

प्राक्कथन

जबसे भारत स्वतंत्र हुआ है, प्राथमिक शिक्षण के लिए नाना प्रकार की पद्धतियों को अपनाया गया है, और शिशु विद्यार्थियों को भाषा एवं गणित विषयक ज्ञान देने के लिए निरन्तर नित-नूतन प्रयोग किये जा रहे हैं। लेकिन ये नवीन पद्धतियाँ और नूतन-प्रयोग किस सीमा तक सफल हो पा रहे हैं, इस यथार्थ का अनुभव सिर्फ एक शिक्षक ही कर सकता है। वह भी इस कारण, क्योंकि एक शिशु-विद्यार्थी से सीधा सम्पर्क केवल उसके शिक्षक का ही रहता है। कोई विद्यार्थी उसके शिक्षण से किस सीमा तक लाभान्वित हो पा रहा है - इस बात को एक शिक्षक से अधिक कौन जान सकता है ?

शिक्षक के बाद, किसी विद्यार्थी का यदि कोई वास्तविक धनी-धोरी है, तो वे हैं उसके माता-पिता। प्रत्येक माता-पिता की यह अपेक्षा होती है कि उसकी सन्तान पुत्र हो या पुत्री, कम से कम भाषा और गणित में तो इतनी निष्णात हो ही जाये कि वह कुछ भी पढ़ लिख सके और रोजमर्रा के जीवन से सम्बन्धित किसी भी प्रकार का हिसाब-किताब चुटकियों में करना सीख जाये। लेकिन जब वे देखते हैं कि उनकी सन्तान अपनी पाठ्यपुस्तक भी ठीक से नहीं पढ़ सकती तथा साधारण सा घरेलू हिसाब भी नहीं लगा सकती, तो वे इतने कुपित हो जाते हैं कि शिक्षक के सिर पर तुरन्त ही जा चढ़ते हैं। परिणाम यह होता है कि धुरन्धर शिक्षा-शास्त्रियों की त्रुटियों का सम्पूर्ण दोष बेचारे शिक्षक को ही ओढ़ना पड़ता है। वह अभिभावकों के समक्ष अपनी 'परवशता' के कारण निरुत्तर-सा रह जाता है और कोई सफाई भी नहीं दे पाता।

इसी बात को, एक दूसरे ढँग से भी कहा जा सकता है। वर्तमान शिक्षण-पद्धतियों को 'बाल-मनोविज्ञान पर आधारित' कहा जाता है। लेकिन विगत सैंतालीस वर्ष के दीर्घकालीन शिक्षण का मेरा अनुभव यह है कि ये पद्धतियाँ देखने में मनोवैज्ञानिक - सी प्रतीत होती

हुई भी 'बाल मनोविज्ञान' से लगभग शून्य सी हैं। इन पद्धतियों के अनुसार, नन्हें-मुन्ने विद्यार्थियों की पीठ पर मोटी-मोटी किताबों और कॉपियों का बोझ लादा जाता है। यह बोझ इतना अधिक होता है कि नन्हें-मुन्ने विद्यार्थी जब भारी-भारी बस्ते पीठ पर लादे हुए स्कूल जाते हैं- तो उनके क्लान्त चेहरे देखकर उन पर तरस सा आता है। यही नहीं, पाठ्यक्रम भी इतना अधिक रहता है कि पाठ ढँग से पढ़ाया जाये तो एक सत्र में तो कदापि पूरा नहीं हो सकता। परिणाम यह होता है कि पूरा सत्र केवल आवश्यक प्रश्नोत्तर लिखाने में ही व्यतीत हो जाता है और विद्यार्थी वास्तविक ज्ञान से लगभग वंचित सा रहता है

यह अनुभव सिद्ध बात है कि बालकों को 'लयबद्ध' अथवा 'संगीतमय' बातें जल्दी याद हो जाती हैं। छोटे बालक 'गद्य' से घबराते हैं और उसे याद करने से कतराते हैं। न तो वे गद्यात्मक पाठ को ध्यान से सुनते हैं और न उसे समझने में ही रुचि लेते हैं। परिणाम यह होता है कि उनके शिक्षक का तो परिश्रम व्यर्थ जाता ही है, पाठ याद न रहने के कारण उन्हें नकल करने के लिए भी विवश होना पड़ता है। आजकल विद्यार्थियों में जो नकल करने की प्रवृत्ति जोर पकड़ती जा रही है, उसके मूल में यही कारण छुपा हुआ है। इस प्रवृत्ति के कारण जिस-जिस प्रकार की दुर्घटनाएँ आजकल घटने लगी हैं, वे किसी से छुपी नहीं हैं।

प्रस्तुत 'कथन' का मुख्य विषय वर्तमान शिक्षण- विधि या शिक्षा-पद्धति के दोष बताना या उसकी आलोचना करना नहीं है। अत: मूल विषय की ओर पाठकों का ध्यानाकर्षण करते हुए संक्षेप में सिर्फ इतना ही कहना उचित है कि शिक्षा-शास्त्रियों को तनिक उस पद्धति की ओर भी अपना दृष्टिपात कर लेना चाहिए, जिसे वर्तमान में चाहे हम 'प्राथमिक शिक्षण की बुंदेली परिपाटी' कह लें, किन्तु वस्तुत: किसी युग में थी, वह समस्त उत्तर भारत की एक मात्र लोकप्रिय शिक्षण-पद्धति। यह पद्धति पिछले दो ढाई हजार वर्ष से बालक-बालिकाओं को ज्ञान का मार्ग दिखाती चली आ रही थी और सिर्फ इसी पद्धति के कारण तत्कालीन शिक्षक 'गुरूजी' की श्रद्धास्पद संज्ञा से विभूषित और लोक सम्मानित रहते थे। साथ ही, उन शिक्षकों के छात्र भी उन्हें जीवन पर्यन्त कभी नहीं भूलते थे और उनके आगे सदैव श्रद्धावनत रहते थे। क्या इस प्रकार के सम्बन्ध आज के विद्यार्थियों और शिक्षकों के बीच पाये जाते हैं ?

आज की तो स्थिति यह है कि एक शिक्षक 'मात्र वेतनभोगी शिक्षाकर्मी' बनकर रह गया है। उसके विद्यार्थी कक्षा पास कर लेने के बाद उसे 'नमस्ते' कहना तो दूर उसे पहिचानते तक नहीं हैं। विद्यार्थी केवल अंक-सूची और प्रमाण-पत्र की उपलब्धि के लिए पढ़ता है तथा

शिक्षक केवल 'कोर्स पूरा करने में' ही अपने कर्त्तव्य की 'इति' समझ लेता है। शिक्षा या विषय के वास्तविक ज्ञान से, दोनों में से किसी का भी कोई सरोकार नहीं रह गया है।

ऐसी स्थिति में हमारा क्या कर्त्तव्य है यह एक विचारणीय प्रश्न है। 'कम्प्यूटर' के इस युग में, शिक्षण की पुरातन परिपाटी को, उस परिपाटी को जिसे प्रचलन से हटे हुए ही लगभग सौ-डेढ़ सौ वर्ष बीत चुके हैं, फिर से प्रचलन में लाना-कहाँ तक उचित होगा- इस प्रश्न पर गंभीरतापूर्वक विचार किया जाना चाहिए। यह ठीक है कि कम्प्यूटर और कैल्कुलेटर के कारण हमें अनेक प्रकार की सुविधाएँ प्राप्त हो गई हैं। किन्तु इनके द्वारा हिसाब-किताब करने में भी आखिर कुछ तो समय लगता ही है और जो लगता है वह भी पुरानी - परिपाटी से पढ़े व्यक्तियों के हिसाब की तुलना में अधिक ही लगता है। फिर एक बात यह भी देखने में आ रही है कि हमारे बालक-बालिकाएँ धीरे-धीरे अपनी स्मरण शक्ति को खोते चले जा रहे हैं। यह इस कारण हो रहा है क्योंकि हम वैज्ञानिक-उपकरणों के मोहताज हो गये हैं। नयी पीढ़ी को हमें इस दोष से बचाना चाहिए।

बुन्देली-परिपाटी

एक परिचय

'प्राथमिक-शिक्षण की बुन्देली-परिपाटी' का अभिप्राय वह शिक्षण-शैली है, जो भारत के स्वतंत्र होने से भी पूर्व, देशी राजाओं के राज्यकाल में, इस बुन्देलखण्ड की भूमि पर प्रचलित थी।

इस परिपाटी की पाठशाला 'चटसाल' (या चटसार) कहलाती थी। विद्यार्थियों को 'चटिया' (या मौड़ी-मौड़ा) कहा जाता था। इस परिपाटी के शिक्षक 'पांड़ेजू' (या पाण्डेय) कहलाते थे।

यह परिपाटी बालक के 'पाटीवर्तना' (या विद्यारम्भ संस्कार) से शुरू होती थी। जब बालक (या बालिका) की आयु पाँच वर्ष के लगभग हो जाती थी तब 'वसन्त पंचमी' के दिन (अथवा किसी शुभ मुहूर्त में) 'पांड़ेजू' द्वारा 'पाटी-छिबाई' का संस्कार संपन्न होता था। यह संस्कार प्राय: किसी मंदिर या देवालय में कराया जाता था । छात्र के माता-पिता उसे नहला धुलाकर, नये वस्त्र पहिनाकर पांड़ेजू के पास ले जाते थे और पांड़ेजू बालक के हाथ में 'खरिया-पाटी' (या सिलेट पेंसिल) पकड़ाकर पूजन कराते थे और 'श्री गणेशाय नम:' तथा 'ओनामासीधम्' लिखवाते थे। तत्पश्चात् छात्र के माता-पिता 'पांड़ेजू' को वस्त्राभूषण और दक्षिणा आदि देकर सम्मानित करते थे। इस घड़ी से बालक (एक प्रकार से) पांड़ेजू की सुपुर्दिगी में पहुँच जाता था।

पांडेजू अपने नये 'चटिया' (शिष्य) को सर्वप्रथम 'ओलम्' का लिखना-पढ़ना सिखाते थे। तत्पश्चात् उसे 'चारौं-पाटी', 'तेरहों लेखे' तथा 'चरनाइके' सिखाते थे। इस पाठ्यक्रम में तीन वर्ष का समय लगता था। प्रथम वर्ष 'चटिया' 'अ श्रेणी' का विद्यार्थी रहता था। द्वितीय वर्ष 'ब श्रेणी' का और तृतीय वर्ष 'पहली कक्षा' का विद्यार्थी कहलाता था।

इन तीनों वर्षों के पाठ्यक्रम को ग्रहण करके छात्र उस स्तर तक पहुँच जाता था कि वह बोले जाने पर किसी भी प्रकार की 'इमला' लिख सकता था, भाषा की कोई भी पुस्तक पढ़ सकता था और दैनिक अंक गणित का कोई भी प्रश्न चुटकियों में हल कर लेता था।

तीन वर्ष के इस पाठ्यक्रम में छात्र को कठोर परिश्रम के अनेक स्तरों से गुजरना पड़ता था। उसे प्रत्येक 'पदौ' घोकना (कण्ठस्थ करना) पड़ता था और घण्टों तक 'परमाच' करनी पड़ती थी। ऐसा न करने की दशा में उसे अपने 'गुरू' से दण्डित भी होना पड़ता था और 'मार' भी खानी पड़ती थी। मजे की बात तो यह है कि वह अपने माता-पिता से गुरूजी या पांड़ेजू की शिकायत भी नहीं कर सकता था। इस सम्बन्ध में उसकी 'सुनवायी' कहीं नहीं होती थी और उलटे डाँट खानी पड़ती थी। इस विषय में एक कहावत प्रचलित थी - 'हाड़-हाड़ बाप के, माँस-चाम गुरू के ।' अर्थात् छात्र को पैदा तो माता-पिता ने किया है, पर उसकी चमड़ी पर केवल गुरू का ही अधिकार है। इसका परिणाम यह होता था, कि 'कुट -पिटकर' छात्र 'खरा सोना' बनकर निकलता था, और मात्र पहली कक्षा की पढ़ाई से ही वह अपनी जीविका कमाने लायक बन जाता था। कभी-कभी कोई छात्र बीच में ही पढ़ना भी छोड़ देता था, किन्तु ऐसा कभी-कभी ही होता था, क्योंकि पांड़ेजू से शिक्षा प्राप्त करना उसकी तत्कालीन 'मजबूरी' थी।

इस सबके बदले में 'पांड़ेजू' को क्या मिलता था ? एकाध पैसा, सीधा, कभी-कभी छात्र के घर न्यौता और या फिर धोती कुर्ते का कपड़ा !

यह जरूरी नहीं था कि 'पांड़ेजू' जाति से ब्राह्मण ही हों। लेखक की पाटी-वर्तना जिन पांड़ेजू ने करायी थी, वे स्वर्गीय लछमन पांड़ेजू जाति से कायस्थ थे। लेखक के बाल्यकाल में मौजूद दूसरे पांड़ेजू - बलदेव पांड़े, देवी पांडे, सोनी पांडे और अण्टे पांडे- ब्राह्मण, वैश्य इत्यादि जातियों से सम्बन्ध रखते थे। मतलब यह कि 'पांड़ेजू' हर उस शिक्षक को कहा जाता था जो 'प्राथमिक स्तर' की शिक्षा देता था और पुरानी परिपाटी से पढ़ाता था। इस सम्बन्ध में केवल 'ब्राह्मण' होना आवश्यक नहीं था और 'जातिवाद' आड़े नहीं आता था।

'चटसाल' की व्यवस्था में तत्कालीन राजाओं का कोई हस्तक्षेप नहीं था। 'चटसाल' या तो किसी 'देवालय' में लगती थी या फिर किसी वृक्ष के नीचे किसी सार्वजनिक चबूतरे पर। पांड़ेजू के घर भी चटसालें लगती थी किन्तु प्राय: बहुत कम। अत: उन्नीसवीं सदी के प्रारंभ में जब अँग्रेजों ने देशी राजाओं को 'सहायक-सन्धि' के मकड़जाल में बाँधा, तो

देशी राज्यों में अँग्रेजी शैली के स्कूलों या मदरसों का खुलना चालू हो गया। परिणाम यह हुआ कि अभिभावकों ने अपने बच्चों को राज्य द्वारा संचालित स्कूलों में भेजना शुरू कर दिया और चटसालों से अपना मुख सा मोड़ लिया। चटसालें अभिभावकों पर निर्भर थीं। अत: दिनोंदिन 'चटिया' कम होते चले गये और 'पांड़ेजू' के भूखों मरने के दिन आते चले गये। धीरे-धीरे ये चटसालें बिलकुल ही बन्द हो गईं। हाँ दस-पाँच चटिया लेकर किसी पेड़ के नीचे बैठने वाले 'पांड़े' छिटपुट रूप में सन् पचास के बाद भी दिखायी देते रहे। किन्तु समय की पुकार और 'पेट की मार' ने उन्हें भी बदलने को मजबूर कर दिया और वे भी पुरानी-परिपाटी त्यागकर नयी शैली की पढ़ाई -पढ़ाने लग गये। दुष्परिणाम सामने हैं। पाटियों के बन्द हो जाने के परिणामस्वरूप छात्रों में व्याकरण सम्बन्धी कमजोरी बनी ही रहती है। लेखों की पढ़ाई बन्द हो जाने से छोटे से छोटा प्रश्न हल करने के लिए भी छात्रों को कागज कलम का सहारा लेना पड़ता है और चरनाइके बन्द हो जाने से नैतिक-शिक्षा सिर्फ किताबों तक सीमित रह गई है। शासकीय-कर्मचारी होने के कारण शिक्षक अपनी जीविका के प्रति इतना निश्चिन्त हो गया है कि उसे अपने कर्त्तव्य का भी 'बोध' नहीं रहा। उद्दण्डता और उच्छृँखलता छात्रजीवन का 'पर्याय' बन कर रह गई है।

पदौ=याद करने के लिए दिया हुआ पाठ, परमाच=सस्वर पाठ का अभ्यास

पाटियों की शोध-यात्रा

मुझे अपने बाल्य-काल के वे दिन अभी भी याद हैं, जब मैं अपने बस्ते को बगल में दबाये, हाथ में लटकी दवात की 'डोर' पकड़े, पंचा-कुर्ता पहिने और सिर पर काली टोपी लगाये हुए, प्राथमिक पाठशाला में पढ़ने जाता था।

स्कूल के रास्ते में एक 'बाड़ा' पड़ता था। उस बाड़े में छोटे-छोटे मौड़ा-मौड़ी खड़े हुए 'परमाच' करते मिलते थे। उनके सामने नीचे फट्टी पर उनके बस्ते रखे होते थे और बस्तों पर लकड़ी की 'पाटियाँ' रखी होती थी। बगल में सरकण्डे की 'कलमें' और स्याही की दवातें रखी रहती थीं। साथ ही मिट्टी की एक 'मलिया' भी रखी रहती थी जिसमें 'मैरठ की माटी', मुलतानी माटी अथवा पानी में घुली दीपक की 'कारौंच' भरी रहती थी। उसके निकट फटे कपड़े का एक 'पोता' भी पड़ा रहता था।

मैं रोज देखता था कि मौड़ा-मौड़ी या तो 'ओनामासीधम्' कह रहे हैं, या फिर गिनती पहाड़े रट रहे हैं। उनके सामने एक वृद्ध 'पांड़ेजू' (स्व. रामदास शुक्ल) 'लबोदा' हाथ में लिए खड़े, परमाच सुन रहे हैं और बीच-बीच में मौड़न की गद्दियों पर लबोदा भी सटकारते जा रहे हैं।

यह दृश्य देखते हुए जाना मेरे लिए प्रतिदिन का काम था। मैं चूँकि सरकारी स्कूल में पढ़ता था, इस कारण समझ में नहीं आता था कि उन बालक-बालिकाओं को 'ओनामासीधम्' क्यों पढ़ाया जा रहा है।

स्कूल से छुट्टी होने पर जब मैं घर लौटता था तो वही मौड़ा-मौड़ी मुझे रास्ते में मिलते थे और एक-दूसरे को चिढ़ाते हुए कहते मिलते थे -

'ओनामासीधम्-बाप पढ़े ना हम'

'पांड़ेजू पछतायेंगे- बेइ चनन की खायेंगे।'

'बारा बज गये, बारा बज गये, तापै बज गऔ एक

पांड़ेजू ने छुट्टी नइ दइ, भूखन मर गऔ पेट।'

इसी प्रकार, बूढ़े-पुराने जब आपस में बातचीत करते थे तो कहते थे -

- वह तो 'ओलम' से ही ऐसा है।

- उसे जरूर किसी ने 'पाटी' पढ़ा दी है, अन्यथा वह ऐसा तो नहीं था।

- वह हिसाब-किताब में कच्चा है, लगता है उसने ढौंचा-पौंचा नहीं पढ़े

आपसी बातचीत में प्रयुक्त होने वाले ये तीन चार शब्द (1) ओनामासी (2) ओलम और (3) पाटी - मेरे लिए बहुत समय तक रहस्य बने रहे। मैं चाहकर भी इनका अर्थ किसी से नहीं पूछ सका।

सन् 1965 में, जबकि मैं दतिया नगर के 'जूनियर बेसिक स्कूल ब्राँच नं. 4' में शिक्षक था, स्वर्गीय दुर्गाप्रसाद शर्मा 'दुर्गेश' प्रधानाध्यापक बनकर आये। दुर्गेश जी मूलत: देश भक्ति के कवि थे, लेकिन बुन्देली-साहित्य से उन्हें अगाध-प्रेम था। वे विद्यार्थियों को पाठ्यक्रम के अतिरिक्त 'ज्ञान' देने में रूचि रखते थे। अत: उन्होंने स्कूल की वार्षिक-पत्रिका 'सरस्वती मंदिर' की नींव डाली। मुझे उसका संपादक बनाया। हम सभी शिक्षकों ने छात्रों के लिए उपयोगी बुन्देली कथा-कहानियों -मुहावरों-कहावतों और पहेलियों का संकलन किया और 'सरस्वती मंदिर' में लगातार पाँच वर्ष तक प्रकाशित किया। इसी सन्दर्भ में एक छात्र ने मुझे किसी पत्रिका का एक फटा-पुराना पृष्ठ दिया जिसमें 'बुन्देली पाटियाँ' छपी थीं और लेखक थे - श्री गुण सागर शर्मा 'सत्यार्थी'।

वे छपी पाटियाँ प्रूफ की त्रुटियों, संग्रहकर्ता की अपनी सीमा तथा व्याख्या न होने के कारण 'दुरूह' तो थी ही, उनकी कोई उपयोगिता भी समझ में न आ रही थी। इस कारण 'सरस्वती मंदिर' में उन्हें नहीं छापा जा सका।

फिर कुछ दिन बाद एक दिन मैंने अपने पूज्य पिता (स्व. पं. नारायण दास शर्मा) को किसी से कहते सुना-'अगर वह नहीं मानेगा तो किसी दिन उसकी 'लीलम झाझम्' हो

जायेगी ।'

मैंने पिताजी से पूछा कि यह 'लीलम झाझम्' क्या चीज है, तो पहले तो वे खूब हँसे । फिर बोले कि 'लीलम झाझम्' पाटियों का एक सूत्र है । मैंने उनसे जानना चाहा तो वे बोले - 'मैंने बचपन में पढ़ी थी, लेकिन अब कुछ याद नहीं है ।'

'याद क्यों नहीं है ?' यह पूछने पर उन्होंने कहा - जिनसे मैंने पाटियाँ पढ़ी थीं, वे पांड़ेजू इनका अर्थ नहीं बतलाते थे । शायद इसी कारण मुझे याद नहीं रही । बात आयी-गयी हो गयी । लेकिन प्रश्न मेरे मन में कुलबुलाता रहा । अपने आसपास के तमाम बड़े-बूढ़ों से पूछा, मगर सभी का एक ही उत्तर था - मुझे याद नहीं रही । इस सिलसिले में, मैंने दतिया नगर के उन बूढ़े-पुरानों से सम्पर्क करना शुरू किया जो शिक्षित भी थे और इस प्रकार की बातों में रूचि भी लेते थे । स्व. पं. बृजभूषण गोस्वामी, वासुदेव गोस्वामी, सेठ राधालाल सुहाने और न जाने कितने वयोवृद्धों से मैंने प्रश्न किये किन्तु पाटियों का सम्पूर्ण पाठ तथा उनका रहस्य किसी के भी द्वारा उद्घाटित नहीं हुआ । हाँ, इस विषय से सम्बन्धित कुछ शब्द अवश्य प्रकाश में आये जैसे- चारऊ पाटी, चन्नाइके, लेखे चटिया, चटसाल, पदौ, पांड़े और न जाने क्या-क्या ?

होते - होते कई महीने खिसक गये लेकिन पाटियाँ रहस्य ही बनी रहीं । एक दिन सहसा मैं अपने एक बहनोई श्री राधेशरण पुरोहित के पास जा पहुँचा । इनकी उम्र मुझसे लगभग पन्द्रह-सोलह वर्ष अधिक है, और इनके पिता स्व.पं. श्यामशरण पुरोहित ने ही मुझे 'अक्षर ज्ञान' कराया था ।

जब मैंने उनसे पाटी-विषयक प्रश्न किया तो वे बोले कि मैंने तो नहीं, हाँ मेरी 'बाई' (माता जी) ने अवश्य पढ़ी हैं । वे जरूर चाहे जब पाटियों को दुहराती रहती हैं ।

मेरे लिए यह एक आश्चर्य का विषय था । जिन पाटियों को बढ़े-बूढ़े और पंडित श्रेणी के व्यक्ति भी नहीं जानते, उन्हें एक बूढ़ी महिला जानती है ।

मैंने तुरन्त एक टेप-रिकार्डर की व्यवस्था की और स्व. श्रीमती रामकुँअर पुरोहित (तत्कालीन उम्र 90 वर्ष) से आग्रह किया कि वे अपनी आवाज में पाटियों को 'टेप' करा दें । मेरी चचेरी बहिन की सास, स्व. रामकुँअर पुरोहित ने बिना किसी आनाकानी के चारों पाटियाँ टेप करा दी । साथ ही पाटियों से सम्बन्धित अनेक बातें बतायीं । पूछने पर उन्होंने

बताया कि सन् 1900 ईस्वी के आस-पास, लड़कियों के माता-पिता उन्हें घर पर ही शिक्षा देते थे । अत: ये पाटियाँ उन्होंने अपने स्व. पिता 'छुट्टू-विलगइयाँ' से पढ़ी हैं । उस ज़माने में पाटियों का पढ़ाया जाना दतिया नगर में एक 'आम बात' थी ।

श्रीमती रामकुँअर पुरोहित से ही मुझे यह जानकारी मिली कि पाटियाँ कितनी थी, उन्हें किस प्रकार पढ़ाया जाता था और चन्नाइके क्या चीज थे । अत्यन्त वृद्धावस्था के कारण स्व. रामकुँअर पुरोहित द्वारा टेप करायी गई पाटियाँ अनेक स्थलों पर 'पाठ-भ्रष्ट' प्रतीत हो रही थीं, अत: मैंने पाटियों की खोज जारी रखी और निरन्तर यही प्रयत्न करता रहा कि पाटियों का शुद्धपाठ मिल जाये । आखिर कुछ महीनों के प्रयास से सफलता हाथ लगी और भूतपूर्व दतिया राज्य के कुतुबखाने (ग्रन्थागार) के बस्तों में चारों-पाटियों और चरनाइकों का लिखित पाठ मिल ही गया । यह पाठ दतिया नरेश महाराज पारीछत (सन् 1802-1839) के राज्यकाल में विक्रम संवत् 1890 में लिपिबद्ध किया गया था और उसके लिपिकार थे - प्रधान रामचंद्र कुडरा । संयोगवश जिस दिन मुझे यह पाण्डुलिपि मिली, उस दिन सोमवार था और इसके ठीक डेढ़ सौ वर्ष पूर्व सोमवार को ही वह पाण्डुलिपि पूर्ण हुई थी । मेरी प्रसन्नता का पारावार न रहा । धीरे-धीरे मेरी जानकारी में 'चन्नाइके, लेखे, और तेंतीसाक्षरी इत्यादि अनेक 'पाठ' आते चले गये और इस जानकारी का निष्कर्ष पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करने का मैंने संकल्प कर लिया ।

सन् 81-82 के लगभग मैं छतरपुर गया । वहाँ विंध्य कोकिल पं. भैयालाल व्यास ने मुझे आकाशवाणी छतरपुर के तत्कालीन केन्द्र निदेशक राजेन्द्र प्रसाद से मिलवाया तो उन्होंने मेरा साक्षात्कार आकाशवाणी से प्रसारित करने की इच्छा प्रकट की । श्री व्यास जी और राजेन्द्र प्रसाद जी दोनों ने ही मुझसे 'पाटी विषयक' प्रश्न किये और इस 'इण्टरव्यू' को प्रसारित किया, जिससे विवाद की स्थिति उत्पन्न हो गई । कुण्डेश्वर (टीकमगढ़) निवासी श्री गुणसागर शर्मा सत्यार्थी 'पाटियों की खोज' पर अपना एकाधिकार समझते थे । उन्होंने मुझे 'शास्त्रार्थ' का चैलेंज तक दे डाला । लेकिन अन्त में जब उन्होंने मेरी बात सुनी तो उनकी धारणा एकदम बदल गई और वे मेरे एक अच्छे मित्र बन गये ।

दिसम्बर 83 में जब 'कादम्बिनी' के अंक में मेरा पाटी विषयक लेख 'ओनामासीधम्'-बाप पढ़े ना हम छपा तो कादम्बिनी के उपसंपादक श्री दुर्गाप्रसाद शुक्ल ने मुझे इनकी व्याख्या करने की प्रेरणा दी जो मैंने की भी । लेकिन लगातार अस्वस्थ रहने के कारण यह व्याख्या प्रकाशित न हो पायी । मैंने भी इस कार्य को एकदम बन्द नहीं किया और निरन्तर खोजशील

रहा। परिणाम यह हुआ कि प्राथमिक शिक्षण की समूची परिपाटी ही मेरी दृष्टि में आ गई। मैं यह दावा तो नहीं करता कि मैंने सबकुछ जान लिया है, तथापि जितना कुछ है वह भी मुझ जैसे अल्पज्ञ के द्वारा बहुत कुछ हो गया है। इसे मेरा अहंकार न समझा जाये। यह तो एक प्रयास मात्र है जो केवल इसलिए किया गया है कि विद्वज्जन एक उपयोगी परिपाटी को लुप्त होने से बचायें।

पहले मेरा विचार केवल 'पाटियों' की व्याख्या करके उन्हें विद्वज्जनों के समक्ष प्रस्तुत करने का था। लेकिन जब डॉ. कपिल तिवारी ने मेरा कादम्बिनी दिसम्बर 1983 के अंक में प्रकाशित 'ओनामासीधम्-बाप पढ़े ना हम' लेख पढ़ा, तो उन्होंने मुझे 'राय' दी कि मैं केवल 'पाटियों' पर ही नहीं बल्कि बुन्देलखण्ड की सम्पूर्ण प्राथमिक शिक्षण परिपाटी पर लिखूँ ताकि यदि वह उपयोगी है तो आज की नयी पीढ़ी उससे कुछ लाभ उठा सकें। डॉ. कपिल तिवारी आदिवासी लोक कला अकादमी के निदेशक तो हैं ही, व्यक्तिगत तौर पर भी वे इस प्रकार के रचनात्मक, परम्परागत और जनोपयोगी लेखन को प्रकाशित करने में पूर्ण मनोयोग से रूचि लेते हैं। अत: उनकी 'राय' मुझे जँच गई और उसका परिणाम 'प्राथमिक शिक्षण की बुन्देली परिपाटी' के रूप में आज आपके सामने है।

इस 'लघु शोध ग्रन्थ' में मैंने 'दुरूह' और निरर्थक समझी जाने वाली 'चारों-पाटियों' की सरल व्याख्या करने का दु:साहस किया है। यह व्याख्या कितनी सार्थक है- इसका निर्णय तो विद्वान् पाठक करेंगे। चारों पाटियों के मूल पाठ के साथ-साथ 'कातंत्र' व्याकरण के प्रथम अध्याय का मूलपाठ भी संलग्न किया है ताकि चारों पाटियों और 'कातंत्र' के सूत्रों की तुलना की जा सके। इसी प्रकार आज से 167 वर्ष पूर्व पढ़ाये जाने वाले 'चरनाइके', 'लघुचरनाइकौ' तथा 'चौंतीसी' (तेंतीसाक्षरी) के भी मूलपाठ संलग्न किये हैं ताकि उस युग के भाषा सम्बन्धी पाठ्यक्रम पर पूरा-पूरा प्रकाश पड़ सके। 'तेरह लेखे' का मूल पाठ भी विक्रमसंवत् 1805 की हस्तलिपि के आधार पर दिया है। ग्रन्थ के परिशिष्ट में भी अनेक उपयोगी बातें सम्मिलित की हैं, जिनसे पाठकों की जानकारी में 'इजाफा' हो सकता है। इस 'परिपाटी' की 'शोध-यात्रा' में मुझे इतने अधिक लोगों से सहयोग मिला है कि मैं यहाँ उन सभी को व्यक्तिगत नामों से सम्बोधित करके उनका आभार प्रदर्शन नहीं कर सकता। हाँ, अपने 'अक्षर गुरू' स्व. पंडित श्यामशरण पुरोहित और उनकी धर्मपत्नी स्व. रामकुँअर पुरोहित के प्रति अवश्य कृतज्ञता ज्ञापन कर रहा हूँ, क्योंकि मेरा 'अक्षर ज्ञान' और 'चारों पाटियों' की परिपाटी को समझने की योग्यता - इन्हीं दोनों का शुभाशीष है।

अन्त में एक बार पुन: आदिवासी लोक कला अकादमी, भोपाल के सम्पूर्ण स्टॉफ का आभार प्रदर्शन करता हूँ जिनके 'सद्प्रयास' के कारण मेरा यह 'शोधकार्य' पाठकों के समक्ष प्रस्तुत हो सका।

महेश कुमार मिश्र 'मधुकर'

संगीत गुरूकुल
पकौरिया महादेव
दतिया (म.प्र.)

पाटियों का इतिहास

आज से पचास वर्ष पूर्व, प्राथमिक स्तर के विद्यार्थी वर्णमाला-बारहखड़ी और गिनती-पहाड़े इत्यादि लिखने के लिए - लकड़ी की आयताकार तख्तियों को काम में लाते थे। इन तख्तियों पर 'कारौंच' (या कोयले का पिसा चूर्ण) पोतकर, खड़िया-मिट्टी के टुकड़े से लिखा जाता था। कुछ लोग मुलतानी मिट्टी का घोल पोतकर, सरकण्डे की कलम से नीली स्याही से लिखते थे। इन्हें 'पाटी' कहते थे। अत: सामान्यजन इन्हें ही 'पाटियाँ' समझता है। पाटियों का अनुसंधान करते समय, लोगों से पूछने पर कि क्या आपने 'पाटियाँ' पढ़ी हैं ? वे इन्हीं का पाठ की तख्तियों के बारे में बताने लगते थे।

वस्तुत: 'पाटी' संस्कृत भाषा का स्त्रीलिंग शब्द है, जो किसी रीति या परंपरा के अर्थ में प्रयुक्त होता है तथा 'परि' उपसर्ग ग्रहण करके 'परिपाटी' के रूप में किसी विधा के परम्परागत-विधि-विधान का द्योतक बन जाता है।

विख्यात ज्योतिर्विद् और गणितज्ञ भास्कराचार्य का 'लीलावती' नामक ग्रन्थ 'पाटी गणित' के नाम से जाना जाता है। [1]

'संस्कृत वाङ्मय परिचय:' के लेखक पं. मधुसूदन प्रसाद मिश्र के अनुसार महर्षि पाणिनि के 'अष्टाध्यायी' की रचना से पूर्व 'महर्षि शाकटायन' का व्याकरण प्रचलित था। इस व्याकरण का प्रथमसूत्र 'ओऽम्नम: सिद्धम्' है। [2] पाटियों के प्रारंभ में भी यही सूत्र पढ़ाया जाता है। अत: स्पष्ट है कि पाटियाँ, शाकटायन व्याकरण के ही आरंभिक-सूत्र हैं। इस बात की पुष्टि शर्ववर्मा के व्याकरण 'कातन्त्र' से भी होती है। [3] कातन्त्र व्याकरण के प्रथम 'सन्धि प्रकरण' के पहले अध्याय के शुरू के चार पाद, प्रचलित चारों पाटियों से मेल खाते हैं। प्रसिद्ध है कि शर्ववर्मा ने अपने व्याकरण की रचना प्राचीन शाकटायन प्रभृति वैयाकरणों के

ग्रन्थों के आधार पर की थी। अतएव स्पष्ट है कि चारों पाटियाँ पूर्वोक्त प्राचीन व्याकरणों के आधार पर तैयार की गई होंगी।

पाटियों के पूर्व भाग में पढ़ायी जाने वाली वर्णमाला 'ओलम्' (ओनम्) 'सिद्धम्' तथा 'वर्णसमाम्नाय' के नाम से जानी जाती है। प्रसिद्ध अरब यात्री अलबीरूनी ने अपने ग्रन्थ 'तहकीक मालिल् हिन्द' में उल्लेख किया है कि भारतीय विद्यार्थियों की प्रारंभिक शिक्षा 'सिद्धम्' से शुरू होती थी। [4] चीनी यात्री ह्वानच्वाङ्ग और 'इत्सिंग' के यात्रा विवरण से भी इस बात की पुष्टि होती है। इन दोनों ही यात्रियों के ग्रन्थों के उद्धरण देते हुए डॉ. जयशंकर मिश्र लिखते हैं - 'चीनी यात्री-ह्वानच्वाङ्ग' ने बच्चों की आरंभिक शिक्षा 'सिद्धमचङ्ग' से प्रारम्भ होना बताया है। सिद्धम सफलता का द्योतक था। 'सिद्धम्' की समाप्ति के पश्चात् सातवें वर्ष पंचविद्याओं का अध्ययन कराया जाता था। ये पंचविद्याएँ थी - (1) शब्दविद्या (व्याकरण) (2) शिल्पविद्या (शिल्प-कलाएँ) (3) चिकित्सा विद्या (आयुर्वेद) (4) हेतु विद्या (न्याय- तर्क) और (5) आध्यात्म विद्या (दर्शनशास्त्र)।

'इत्सिंग' ने भी बालकों की शिक्षा का प्रारंभ 'सिद्धिरस्तु' नामक पुस्तक से माना है, जिसमें वर्णमाला-स्वर और व्यंजन का विनियोग था। [5]

संवत् 1336 विक्रमी में रचित 'बालशिक्षा' नामक पुस्तक व्याकरण के प्राथमिक अध्येताओं के लिए एक अत्युत्तम ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ के रचनाकार 'संग्रामसिंह ठक्कुर' ने अपने ग्रन्थ में 'कातन्त्र व्याकरण' का तो आधार लिया ही है, अपने समय में प्रचलित भारत की सम्पर्क भाषा के उन शब्दों का भी प्रचुरता के साथ संग्रह किया है जो वर्तमान बुन्देली-भाषा के 'पूर्वज' प्रतीत होते हैं। इस ग्रन्थ से भी इस बात की पुष्टि होती है कि तेरहवीं शताब्दी में पाटियाँ पढ़ाई जाती थी और उनका तत्कालीन स्वरूप कैसा था।

सोलहवीं-सत्रहवीं शताब्दी के रीतिग्रन्थों और काव्यों में 'चारऊ-पाटी' तथा 'पाटी-पढ़ि आये' शब्दों का प्रयोग मिलता है, जो प्रमाणित करता है कि तत्कालीन कवि 'पाटियों', उनकी संख्या तथा उन्हें पढ़ाये जाने के यथार्थ से भलीप्रकार से परिचित थे।

दतिया नरेश महाराजा 'पारीछत' (सन् 1802-1839) के समय में पाटियों को (संभवत: प्रथमबार) लिपिबद्ध किया गया। दिलीप नगर (दतिया) के एक कायस्थ प्रधान रामचन्द्र कुडरा ने क्वाँरवदी नवमी सोमवार संवत् 1890 वि. को अपना यह 'लिपिकार्य' पूर्ण

किया। यह 'पाण्डुलिपि' वर्तमान में दतिया के 'पुरातत्व संग्रहालय' के ग्रन्थागार में सुरक्षित है। इस पाण्डुलिपि में सात-पाटियाँ लिखी हुई हैं। जिनमें से शुरू की चार तो वही हैं जिनका सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड में प्रचलन था, और शेष तीन पाटियों को 'बड़ी ओनिमि' नाम से सम्बोधित किया गया है और जिनके माध्यम से 'चौपही छन्द' में 'नीति वाक्यों' की शिक्षा दी गई है।

निष्कर्ष यह कि 'पाटियों' की शिक्षा सुदूर पुरातन काल से चली आ रही है। हाँ, यह अवश्य है कि उनके नाम विभिन्न कालों में भिन्न-भिन्न रहते आये हैं।कभी उन्हें शाकटायन व्याकरण के सूत्र कहा गया, तो कभी 'कातन्त्र व्याकरण' के। कभी 'सिद्धिरस्तु', तो कभी सिद्धमचङ्ग। भास्कराचार्य के काल से इन्हें 'पाटी' कहा जाने लगा। एक समय था जबकि पाटियाँ समग्र उत्तरी भारत में प्रचलित थीं और प्राथमिक व्याकरण शिक्षण का प्रमुख साधन मानी जाती थीं। फिर एक समय ऐसा भी आया जब ये मात्र 'जेजाकमुक्ति' अथवा बुन्देलखण्ड तक ही सीमित रह गईं और भारत में अँग्रेजी शिक्षा प्रणाली के प्रचलन से मात्र मौखिक वार्तालाप तक शेष रह गईं।

पाटियों के उपलब्ध इतिहास का पुनरीक्षण करने पर यह प्रश्न उठता है कि क्या पाटियाँ कातंत्र व्याकरण या शाकटायन व्याकरण के सूत्र हैं ? यदि यह सत्य है तो पाटियों, कातंत्र व्याकरण और शाकटायन व्याकरण को एक दूसरे के समानान्तर प्रचलित क्यों रहने दिया गया ? पाटियों को अलग से पढ़ाये जाने की क्या जरूरत थी ? जबकि पाटियाँ विकृत और अपभ्रष्ट प्रतीत होती है - इन्हें बन्द करा कर कातंत्र की ही शिक्षण व्यवस्था क्यों नहीं की गई ? यह एक जटिल प्रश्न है। उत्तर भारत के जैन-समाज में 'कातन्त्र के शिक्षण की परम्परा के प्रमाण-आज भी उपलब्ध हैं। लेकिन 'हिन्दू समाज' में कातंत्र की बजाय 'पाटियों' के शिक्षण के ही प्रमाण मिलते हैं। इस भिन्नता की स्थिति में कातंत्र और पाटियों की तुलना करने पर ही उपरोक्त प्रश्न का उत्तर मिल सकता है।

'कातंत्र' के प्रथम संधि प्रकरण के प्रथम अध्याय के आरंभिक चार 'पाद' और चारों पाटियों के मूल पाठ में आश्चर्यजनक साम्य है जिसे देखकर यह प्रतीत होता है कि चारों पाटियाँ कातंत्र के चारों पादों का विकृत या अपभ्रष्ट रूप हैं। लेकिन इस सम्बन्ध में निम्नलिखित तथ्य आड़े आते हैं - कातंत्र व्याकरण का प्रारंभ 'सिद्धो वर्णसमाम्नाय:' सूत्र से होता है जबकि पाटियों की शुरूआत 'ओनामासीधम्' (ॐ नम: सिद्धम्) से होती है। 'ॐ नम: सिद्धम्' यह सूत्र शाकटायन व्याकरण का प्रथम सूत्र माना जाता है। अत: तय

है कि 'पाटियाँ' शाकटायन व्याकरण के प्रारम्भिक सूत्र भले हों- कातन्त्र के तो कदापि नहीं है।

'कातंत्र' के प्रथम अध्याय (जिससे पाटियों के सूत्र मेल खाते हैं) में पाँच पाद हैं। इसके चार 'पाद' तो चारों - पाटियों से मेल खाते हैं किन्तु अन्तिम पाँचवा पाद 'पाटियों' से मेल नहीं खाता। बल्कि यह कहना चाहिए कि पाँचवें पाद का एक भी सूत्र किसी पाटी मे ंनहीं है जबकि वह 'विसर्ग संधि' से सम्बन्धित होने के कारण अनिवार्य था।' चारों-पाटियों और कातंत्र व्याकरण को एक दूसरे के समानान्तर पढ़ाये जाने के प्रमाण मिले हैं। दतिया में कातंत्र व्याकरण सिर्फ 'जैन सम्प्रदाय' के अन्तर्गत ही पढ़ाया जाता था। जबकि पाटियों को सभी लोग पढ़ते थे। फिर एक तथ्य और ऐसा है जो सिद्ध करता है कि पाटियाँ स्वतंत्र थी और वह यह कि चारों पाटियों का मूलपाठ सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड में एक जैसा है। यदि पाटियाँ 'कातंत्र' का अपभ्रष्ट रूप होती तो - उनके मूलपाठ और उच्चारण तथा 'परमाच' में स्थानीय भिन्नता अवश्य होती-जोकि है नहीं। रामचन्द्र कुडरा की हस्तलिखित-प्रति, स्व. श्रीमती रामकुँअर पुरोहित के पाठ की 'टेप' तथा अन्यान्य वयोवृद्धों के मुँह से पाटियों को सुनने के उपरान्त यह निष्कर्ष निकलता है कि चारों पाटियों का मूल पाठ सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड में एक-समान था। अत: निश्चित है कि पाटियाँ शाकटायन व्याकरण के सूत्र भले हों, कातंत्र के तो कदापि नहीं हैं।

1. संस्कृत वाङ् मय परिचय : / पृष्ठ 28, 2. वही. / पृष्ठ 16
3. वही बालशिक्षा-'कातंत्र व्याकरण सूत्र पाठ :'/ पृष्ठ 157-158
4. ग्यारहवीं सदी का भारत/पृष्ठ 167-168,
5. वही/पृष्ठ 167-168

पाटियों के लोप का कारण

पाटियों का 'लोप' क्यों हुआ अथवा पाटियाँ प्रचलन से क्यों हटी- इस सम्बन्ध में निम्नलिखित कारणों पर प्रकाश डालना होगा -

1. पाटियाँ मौखिक व परम्परागत रूप में पढ़ायी जाती थीं। संभवत: इनका लिखित स्वरूप प्रचलित न था। यदि पाटियों का लिखित रूप प्रचलित होता तो संभव था कि पाटियाँ आज भी किसी न किसी रूप में प्रचलित रहती। रामचन्द्र कुडरा लिखित 'पाटी-चरनाइके' नामक पाण्डुलिपि एकमात्र उदाहरण है। लेकिन वह भी संभवत: दतिया नरेश की आज्ञा से अथवा प्रतिलिपिकार की स्वयं की प्रेरणा से लिखी गई थी। उसकी किसी अन्य प्रति का दर्शन न होना भी इस बात को प्रमाणित करता है कि पाटियों को लिखित रूप में सुरक्षित रखने में किसी की रूचि न थी अन्यथा उनकी अन्य प्रतियाँ भी उपलब्ध होतीं।

2. पाटियों का 'कातंत्र' से मेल खानाज्ञ सरसरी दृष्टि से देखने पर 'चारों पाटियाँ' कातंत्र व्याकरण के 'प्रथम-संधिप्रकरणम्' के प्रथम अध्याय के आरंभिक चारों पादों का 'अपभ्रष्ट रूप' प्रतीत होती है। चूँकि 'कातंत्र' का प्रचलन आज भी है और उसका लिखित रूप भी उपलब्ध है, इस कारण संभव है कि पाटियों को अनावश्यक समझकर उन्हें पढ़ाये जाने में 'आपत्ति' की गई हो।

3. पाटियों के सूत्र महर्षि शाकटायन के व्याकरण पर आधारित हैं। अत: महर्षि पाणिनि के व्याकरण 'अष्टाध्यायी' के प्रचलित होने से जिस प्रकार 'शाकटायन व्याकरण' का प्रचलन बन्द हो गया, संभवत: उसी प्रकार अन्यान्य बालबोध व्याकरणों के प्रचार ने पाटियों को भी प्रचलन से हटा दिया।

4. संस्कृत व्याकरण के 'शिक्षक' पाटियों को व्यर्थ की बकवास समझकर उनकी उपेक्षा करते थे।

5. पाटियों के परम्परागत शिक्षक 'पांड़े' न तो उनका अर्थ स्वयं जानते थे (और यदि जानते भी थे तो) उसे विद्यार्थियों को नहीं समझाते थे।

6. पाटियों का प्रचलन बन्द करने में सबसे अधिक सहयोग उनकी दुरूहता ने दिया है। यदि वे दुर्बोध न हो गई होती तो उनकी उपयोगिता निश्चय ही उन्हें प्रचलित रखती।

7. पाटी- पढ़ाने वाले शिक्षक अपनी जीविका के लिए 'अभिभावकों की दान-दक्षिणा' पर निर्भर रहते थे। राजा की ओर से उन्हें कोई सुविधा प्राप्त न थी

पाटियों के पठन-पाठन की विधि

पाटियों का पठन-पाठन कैसे होता था, इस सम्बन्ध में मैंने अपने पूज्य पिता स्व. पं. नारायण दास शर्मा, दतिया नगर के वयोवृद्ध शिक्षक स्व. पं. बृजभूषण गोस्वामी, स्व. राधालाल सुहाने, स्व. पं. बनमाली त्रिपाठी वैद्य, स्व. पुजारी पं. रघुनंदन लिटौरिया और पं. राधेशरण पुरोहित की पूज्य माताजी स्व. रामकुँअर पुरोहित इत्यादि अनेक वयोवृद्धों से चर्चा की। इन सभी में प्रामाणिक जानकारी मुझे श्रीमती रामकुँअर पुरोहित (तत्कालीन आयु 90 वर्ष) से प्राप्त हुई जो उनकी आवाज में 'टेप' के रूप में मेरे पास आज भी सुरक्षित है।

तदनुसार, छात्रों को सर्वप्रथम पाटियों का एक-एक सूत्र सिखाया जाता था। तत्पश्चात् उन्हें लकड़ी की तख्तियों पर लिखना बताया जाता था। जब छात्रों को सूत्र याद हो जाते थे, तब उनकी 'परमाच' करायी जाती थी। कोई एक छात्र खड़े होकर 'ओनामासीधम्' से पाटियों के सूत्रों का क्रमश: उच्चारण करता था और शेष छात्र-छात्राएँ खड़े होकर उनका एक साथ उच्चारण करते जाते थे। इस क्रिया को 'परमाच' कहते थे। उस युग की यह एक सर्वमान्य पाठन शैली थी जो ग्रामीण क्षेत्रों में आज भी प्रचलित है।

'परमाच' की इस क्रिया में किसी भी एक सूत्र का सम्पूर्ण उच्चारण-काल, ताल 'कहरवा' के समतुल्य रहता है और आठ ह्रस्वाक्षरों के उच्चारण-काल में पूरा होता है। इस क्रिया में, कभी-कभी एक ही सूत्र के दो या तीन खण्ड भी करने पड़ते थे, जैसा कि इस सूत्र में स्पष्ट है -

मूलसूत्र - सिद्धो वर्ण समाम्नाय:
परमाच - सि ऽ ध्धो ऽ व ऽ र्ण ह
स मा ऽ म् ना ऽ य ह

अथवा - सि ऽ ध्धो ऽ ब र ना ऽ
स मा ऽ म ना ऽ या ऽ

पाटियों के मूल संस्कृत सूत्र जो अपभ्रष्ट होकर दुरूह और दुर्बोध हुए हैं, उसका प्रमुख कारण मात्र यही है। लेकिन इस दोष का परिहार न उस युग में था और न आज है। असावधानी और प्रमादपूर्ण पाठन के कारण इस दोष का उत्पन्न हो जाना स्वाभाविक है।

ओलम की परमाच

श्री गणेशाय नम: -सिरी गने-सा-न्म: ॥
अ - छोटौ अ ऽ ॥
आ - ब ऽ ड़ौ ऽ आ ऽ ॥
इ - छोटी इ ऽ ॥
ई - ब ऽ ड़ी ऽ ई ऽ ॥
उ - छोटौ उ ऽ ॥
ऊ - ब ऽ ड़ौ ऽ ऊ ऽ ॥
ऋ-ॠ - रिर् ऽ रिरी ऽ ॥
ऌ-ॡ - लिर् ऽ लिरी ऽ ॥
ए-ऐ - ए ऽ अ इ ऽ ॥
ओ-औ - ओ ऽ अ ऊ ऽ ॥
अं-अ: - अम् ऽ अह ऽ ॥

खरियन की परमाच

1. मनकिन क ऽ ।
2. कानौ का ऽ ।
3. पिच्छौं कि ऽ ।
4. अग्गौं की ऽ ।
5. लातुर कु ऽ ।

6. बिड़ान कू ऽ ।

7. इक्लक के ऽ ।

8. दोलक कइ ऽ ।

9. कनमत को ऽ ।

10. दिलाबर कउ ऽ ।

11. मस्त्रे कम् ऽ ।

12. द्वासी क: की दो बिन्दी ॥

सम्पूर्ण 'बारहखड़ी' की 'परमाच' इसी प्रकार करायी जाती थी। मुझे कुछ फटे-पुराने पृष्ठ प्राप्त हुए है जो संभवत: लगभग दो सौ वर्ष पूर्व की हस्तलिपि में हैं। इन पृष्ठों में 'संयुक्ताक्षरों' की बारहखड़ी दी हुई है जिससे यह प्रमाणित होता है कि उस काल में सभी प्रकार के संयुक्ताक्षरों की बारहखड़ी सिखाने में कितनी सावधानी बरती जाती थी। उदाहरणार्थ कुछ संयुक्ताक्षरों की बारहखड़ी प्रस्तुत है-

संयुक्ताक्षरों की बारहखड़ी

1. मनकिन क्र

2. कानौ क्रा

3. पिच्छो क्रि

4. अग्गौं क्री

5. लातुर क्रु

6. बिड़ान क्रू

7. इक्लक क्रे

8. दोलक क्रै

9. कनमत क्रो

10. दिलाबर क्रौ

11. मस्त्रे क्रं

12. द्वासी क्र: की दो बिन्दी

'र' को संयुक्त करके सभी व्यंजनों को निम्नानुसार दिखाया गया है -

क्र , ख्र , ग्र , घ्र , ङ्र ।

च्र , छ्र , ज्र , झ्र , ञ्र ।

ट्र , ठ्र , ड्र , ढ्र , ण्र ।

त्र , थ्र , द्र , ध्र , न्र ।

प्र , फ्र , ब्र , भ्र , म्र ।

य्र , र्‍ु , ल्र , व्र ।

श्र , ष्र , स्र , ह्र ।

क्ष , त्र , ज्ञ ।

बुन्देली-वर्ण लिपि

यद्यपि बुन्देलखण्ड में भी देवनागरी लिपि के उन्हीं वर्णों का प्रयोग किया जाता है, जिनका उत्तर भारत के सभी हिन्दी भाषी क्षेत्रों में प्रचलन है, तथापि पिछली तीन चार सदियों की अवधि में लिपिबद्ध की गई बुन्देली-साहित्य की हस्तलिखित पाण्डुलिपियों को देखने से विदित होता है कि बुन्देली वर्णमाला की वर्ण-लिपि किंचित् स्थानीय भिन्नता रखती है। यह भिन्नता कुछ तो लिपिकर्ताओं के व्यक्तिगत हस्तलेख के कारण पैदा हुई है, और कुछ इस कारण भी हुई है कि बुन्देली भाषा में कुछ ध्वनियों का अभाव है एवं कुछ ध्वनियाँ विशेष हैं।

1. बुन्देली वर्णलिपि में ‘अ’ को ‘ग्र’ लिखा जाता है।
   अत: अ-आ, ओ-औ और अं अ : को -
   ग्र-ग्रा, ग्रो -ग्रौ, ग्रं-ग्र: लिखा जाता है।

2. इ-ई को उनकी मात्रा सहित ड़ि-ड़ी लिखा मिलता है।

3. उ-ऊ में कोई अन्तर नहीं है।

4. ऋ ॠ और ऌ ॡ को वर्णमाला में पढ़ाया तो जाता था किन्तु इनका उच्चारण रिर्-रिरी तथा लिर्-लिरी कराया जाता था। इन चारों वर्णों को लिखना तो सिखाया जाता था किन्तु बुन्देली में इनका कोई उपयोग न होने के कारण इन चारों का प्राय: अभाव पाया जाता है।

5. ए-ऐ को प्राय: ऐ-ऐ लिखा जाता था। कुछ प्रतियों में इन्हें ग्रे-ग्रै के रूप में भी लिखा गया है।

6. ‘ख’ को ‘ष’ लिखा गया है।

7. ‘घ’ को ‘**घ**’ लिखा जाता था।

8. ‘झ’ को ‘**झ**’ लिखा जाता था।

9. ‘य’ को ‘य़’ (नीचे एक बिन्दु लगाकर) लिखा गया है।

10. ब और व को ‘व’ और ‘व़’ लिखा जाता था।

11. श और ष की ध्वनियों का अभाव होने के कारण इन्हें दन्त्य ‘स’ के रूप में लिखा जाता था।

12. ‘र’ में ‘उ’ की मात्रा लगाकर उसे प्राय: रु या नु लिखा गया है। इसके दीर्घ रूप को रू या नू लिखा जाता था।

13. ‘र’ को स्वरहीनता की दशा में ‘-’ लिखकर बाद वाले अक्षर से जोड़ दिया जाता था। यथा-‘-या’ (र्या)

14. ड़ और ढ़ को प्राय: अधोबिन्दु रहित रूप में ‘ड’ या ‘ढ’ लिखा गया है।

15. प्राय: ङ, ञ और ण के स्थान पर केवल ‘न’ लिखा जाता था।

पाटियों का मूल-पाठ

श्री गनेसजू ॥ श्री सरसुती जू ॥
॥ दोहा ॥
श्री विश्नु ब्रह्मा सिव कालका, गनपत सरसुत भान ।
सुर मुन चित्रगुपित्र गुर, दुज तीरथ उर आंन ॥1॥
श्री रामचन्द्रं गुनं सीलं, तपा ऐकं जथा बधू ।
आइी ऊ भी झषै ठाढी, घटै छाड़ै बहै फया ॥2॥

॥ अथ पाटी ॥

ॐ नामासीधं ॥
ञ्र ञ्रा इ ई उ ऊ ॥
रे रै ले लै ऐ ऐै ॥
ञ्रो ञ्रा ऊ ञ्रंगाहा ॥
का षा गा घं ना ॥
चा छा जा झंना ॥
टा ठा डा ढं ना ॥
ता था दा धं ना ॥
पा फा बा भं मा ॥
जा रा ला वा ॥
सं षे सा हा लं छे ॥
सिध्धो बरना ॥

समा मना या ॥
चत्रो चत्रो दासा ॥
दाऊ सोरो ॥
दसैं समाना ॥
तेषं दुत्या बरनो ॥
निसि निसि बरनो ॥
पूरभोरस्या ॥
पारो दुरगा ॥
सारो बरना ॥
बरजो नामी ॥
इिकरा दैनी ॥
संधि करानी ॥
कादैनी विंज्यानानी ॥
तेवर कौ पंची पंचा ॥
बरगा नामी ॥
परथम दुत्या ॥
सकुचां हेचां ॥
घोषाघोषु पतोर नौ ॥
ञ्रनुना सीषा ॥
नैगर नामा ॥
ञ्रंतूस्थां जारालावा ॥
ऊषमान सकुचॉ हॉ ॥
ञ्राइीतीविसारोजन्या ॥
ञ्रषैइीती जभ्या मोल्या ॥
पफइीती पद मान्या ॥
ञ्रनंतन सोर ॥
पूरभोपलीरथो ॥
पाला है पाली पदं ॥
विंज्यानामी सुरं पूरं ॥
बरन ऐनैतूं ॥

ञ्रनंतकर मैलं ॥
विसलैष जैत ॥
लिषौ पंचोरा ॥
दुरगन संधी ॥
ऐती संधौ सूतरता ॥
परथम संधि समापता ॥
पाटी पैली पूर्न ॥1॥

दूसरी पाटी

समानिसि बरनो ॥
दुरग भवंती ॥
प्रहास लोपे ॥
ञ्राबरनइी बरनैयौ ॥
ऐ बरनै ऐ ॥
ञ्रो बरनै वो ॥
री बरनै ञ्रालू ॥
ली बरनै कालू ॥
ऐ कारे ऐकारे चा ॥
ञ्रोकारे ञ्रोकारे चा ॥
ऐ बरनै जिम्मिस बरनै ॥
निचपर लुप्या ॥
बंभू बरना ॥
रिंब्बिर बरना ॥
लिंम्मिर बरना ॥
ऐजै ञ्राजू ॥
वो बै ञ्रावू ॥
ञ्राधीमान जमाना लोपे ॥
पाल पदन्ते ॥
नामा लोपे ॥
इिसिविरि करते ॥

लुकभकारे ॥
ना विंजाने ॥
सुरान संधी ॥
ऐती संधौ सूतरता ॥
दुरती संधि समापता ॥
पाटी दूसरी पूर्न ॥2॥

तीसरी पाटी

ञ्रोदन्ता ञ्रनि ञ्रनि पंता ॥
सिरविर करता ॥
दूरबचनामीनौ ॥
गुरबच नामी नौ ॥
बौहबचनामी नौ ॥
ञ्रान मान पतिस्टां चा ॥
ऐती संधौ सूतरता ॥
तिरती संधि समापता ॥
पाटी तीसरी पूर्न ॥3॥

चौथी पाटी

बरग परथमा पूजंते ॥
सोरा घोषा बातासू ॥
ञ्रांनति रथिया ञ्रानं ॥
पंचै पंचैभ्यामं ॥
सोरतिरथिया ञ्रतने वा ॥
बरग परथमा ॥
भऐ सुषारी लेवा ॥
सोर जोर पिचकारी नेवा ॥
त्रभू ञ्राऐ कालं ॥
पारा रूपं ॥
जगत सरूपं ॥

ट्ंकारे लाचट बरगेषु ॥
चनुछे त्र्अंनुना ॥
पनुफे गनुना ॥
रसो पढाया ॥
जसो पढाया ॥
सोरं देवी लेवंता ॥
तथेसुकारे ॥
पफे सुकारे ॥
लीलं झाझं झझन सुकारे ॥
षुन गऐ षरग सनीचरु वारे ॥
डिढं पुलिस्टं कारेषू ॥
मौन समारे विंजाने ॥
बरगा सु बरगा ॥
पंचमहुरवा ॥
ऐती संधौ सूतरता ॥
चतुरती संधि समापता ॥
पाटी चौथी पूर्न ॥ 4॥

चारों पाटियों की व्याख्या

चारों पाटियों का लिखित रूप सर्वप्रथम रामचन्द्र कुड़रा की हस्तलिखित प्रति 'पाटी चरनाइके' में देखने को मिलता है। चूँकि लोक में मौखिक रूप में प्रचलित पाटियों और 'पाटी चरनाइके' में लिपिबद्ध की गई पाटियों के मूलपाठ में बहुत कुछ समानता है, अत: पाटियों की व्याख्या के लिए इसी प्रति को आधार बनाया गया है।

पाटियों के प्रारंभ में 'मंगलाचरण' की परम्परा का पालन करते हुए रामचन्द्र कुड़रा 'श्री गनेस जू' कहकर विघ्नविनाशक श्री गणेश जी का और 'श्री सरसुती जू' कहकर वाणी की अधिष्ठात्री देवी सरस्वती का स्मरण करते हैं। तत्पश्चात् दो दोहे लिखते हैं :

श्री विस्नु ब्रह्मा सिव कालका, गनपत सरसुत भान ।
सुर मुन चित्रगुपित्र गुर, दुज तीरथ उर आन ॥1॥

श्री राम चंद्रं गुनं सीलं, तपा ऐकं जथा वधू ।
आई ऊभी झषै ठाढी, घटै छाड़ै वहै फया ॥2॥

इनमें से पहले दोहे में एकबार फिर से मंगलाचरण की परम्परा का पालन करते हुए श्री (लक्ष्मी), विस्नु (भगवान् विष्णु), ब्रह्मा (जगत् सृष्टा ब्रह्मा जी), सिव (महादेव शंकर) कालका (शक्ति और कल्याण की देवी), गनपत (गणपति), सरसुत (सरस्वती जी), भान (सूर्य देवता), सुर (सभी देवों), मुन (ऋषि-मुनियों), चित्रगुपित्र (चित्रगुप्त अर्थात् यमराज) गुर (गुरू), दुज (द्विज-ब्राह्मण या द्विजाति) तीरथ (तीर्थ) आदि को हृदय में धारण करने अथवा इनका स्मरण करने की बात कही है।

दूसरा दोहा (जो कि संस्कृत के श्लोक छन्द का विकृत रूप अधिक है दोहा कम) प्रस्तुत करते हुए प्रतिलिपिकार ने एक 'गूढार्थ छन्द' लिपिबद्ध किया है।

यह छन्द आज से साठ-सत्तर वर्ष पूर्व तक पढ़ाया जाता रहा है। इसका प्रचलित अर्थ तो किसी के भी मुख से सुनने को नहीं मिला। हाँ यह जानकारी अवश्य प्राप्त हुई कि इस छन्द को पढ़ाया जाना जरूरी अवश्य समझा जाता था। तेंतीस अक्षरों से बने इस छन्द के चार चरण हैं। प्रथम चरण नौ अक्षरों का, और शेष तीन चरण आठ-आठ अक्षरों से बने हैं। दूसरे और चौथे चरण के अन्त में एक-एक 'रगण' (गुरू लघु गुरू) तथा पहले तथा तीसरे चरण के अन्त में एक एक 'मगण' (तीन गुरू) रखा गया है। यदि प्रथम चरण का आदिम अक्षर 'श्री' न गिना जाये तो यह आठ-आठ अक्षरों वाले चार चरणों का छंद है।

लेखक के मतानुसार इस छन्द का संभावित अर्थ निम्नानुसार निकल सकता है -

'श्री रामचन्द्र जी अपने गुणों और आचरण के कारण एकमात्र आदर्शपुरूष प्रमाणित हैं। बिलकुल वैसी ही उनकी पत्नी सीता है। मृत्यु हमारे शरीर से प्राणों का अपहरण करने के लिए तत्पर खड़ी है। अरे मन, यह देखकर भी तू श्रीराम के चरित्र का अनुकरण क्यों नहीं करता ?'

इन दोनों 'दोहों' (छन्दों) के पश्चात् 'त्र्अथा पाटी' कहकर पाटियों का आरंभ किया गया है। 'अथा' शब्द 'अथ' का बुंदेली रूप है। इसे भी 'मंगल वाचक' माना जाता है। ' ग्रन्थारंभ करने से पहले 'अथ' का प्रयोग, एक भारतीय परम्परा है। इसके अन्य प्रयोग-संशय आरंभ, अधिकार, अनन्तर, अन्वादेश, प्रतिज्ञा, प्रश्न तथा 'साकल्य' (सकल का भाव-समुदाय) के अर्थ में किये जाते हैं।

ॐ नम: सिद्धम्

'ऋथापाटी' लिखने के उपरान्त प्रधान रामचन्द्र कुडरा ने पाटियों के आरंभ में 'ॐ नामासीधं' लिखा है। 'संस्कृत वाङ्मय परिचय:' के लेखक पं. मधुसूदन प्रसाद मिश्र के अनुसार 'ॐ नम: सिद्धम्' महर्षि शाकटायन के व्याकरण का प्रथम सूत्र है। जैन समाज में भी एक शाकटायन-व्याकरण प्रचलित है और उसका भी प्रथम सूत्र 'ॐ नम: सिद्धम्' ही माना जाता है। किन्तु यह व्याकरण महर्षि शाकटायन के व्याकरण से भिन्न है तथा अर्वाचीन माना जाता है।

जैन समाज के लोग इस सूत्र को 'ॐ नम: सिद्धाय ' पढ़ते हुए इसका यह अर्थ करते हैं-जिसने अपने तप और इंद्रिय निग्रह के बल पर 'सिद्धि' प्राप्त कर ली है, उसे नमस्कार।

किन्तु 'सूत्र' का यह अन्वयार्थ भ्रान्ति पूर्ण है। संस्कृत व्याकरण के नियमानुसार 'नम:' पद के साथ चतुर्थी विभक्ति का प्रयोग होता है - द्वितीया का नहीं। अत: 'ॐ नम: सिद्धम्' का अर्थ 'सिद्ध' को नमस्कार, यह कदापि नहीं हो सकता। इसी प्रकार केवल मनोनुकूल अर्थ ग्रहण के लिए यदि 'ॐ नम: सिद्धाय' कहा जाता है तो यह भी गलत है। कारण कि समूचे उत्तरभारत में 'ॐ नम: सिद्धम्' (या ओनामासीधम्) ही पढ़ाया जाता रहा है - ॐ नम: सिद्धाय नहीं। अत: यह पाठ लोकविरूद्ध तो है ही, परम्परा तथा शास्त्र विरूद्ध भी है।

वस्तुत: यह सूत्र 'मंगलवाचक' या 'नम: वाचक' न होकर मात्र 'संज्ञासूत्र' है जो यह स्पष्ट करता है कि आगे जो वर्णमाला पढ़ायी जाने वाली है - उसकी प्राचीन तथा परम्परागत 'संज्ञा' क्या है। ॐ नम: सिद्धम् का अन्वयार्थ इस प्रकार निकलता है- ॐ नम: एव सिद्धम्। अर्थात् ओनम ही सिद्धम् है। अथवा ओनम को ही 'सिद्धम्' कहते हैं। चूँकि इस सूत्र से पाटियों का 'संज्ञा प्रक्रम' प्रारंभ होता है। इस कारण अर्थ की यही संगति ठीक है।

इस विचार की पुष्टि डॉ. जयशंकर मिश्र के ग्रन्थ 'ग्यारहवीं सदी का भारत' से भी होती है। तद्नुसार अरब यात्री अलबीरूनी, चीनी यात्री 'ह्वानच्वाङ्ग' और 'इत्सिंग' ने अपने यात्रा विवरणों में, तत्कालीन प्राथमिक शिक्षण की पुस्तक को 'सिद्धिरस्तु' और शिक्षण के प्रारंभ को 'सिद्धम्' या 'सिद्धमचङ्ग' कहकर सम्बोधित किया है। इस पुस्तक के सभी लक्षण वर्तमान 'पाटियों' से मेल खाते हैं। पाटियों के प्रारंभ में 'ओनामासीधम्' (ॐ नम: सिद्धम्)

और वर्णमाला के अन्त में 'सिद्धो बरना समामनाया' (सिद्धोवर्णसमाम्नाय:) कहा गया है। प्रथम सूत्र को एक भिन्न दृष्टिकोण से देखने पर ज्ञात होता है कि ओनामासीधम् के दो भाग हैं। प्रथम-ॐ नम: और द्वितीय सिद्धम्।

ॐ नम: या ओंनम: को लोक भाषा में 'ओलम्' भी कहते हैं, जिसका प्रचलित अर्थ 'आरम्भ' माना जाता है। अर्थात् जब यह कहना होता है कि वह शुरू से ही ऐसा है तो बुन्देली में कहा जाता है-'वौ ओलम् सें ऐसौइ है।' बुन्देलखण्ड में वर्णमाला को 'ओलम्' कहा जाता है। ओलम् ॐ नम: के उच्चारण में वर्ण विपर्यय के कारण प्रचलित हुआ है। जनसामान्य प्राय: 'न' को 'ल' कह बैठता है। अत: ओलम्, ॐ नम: का ही वर्ण विपर्यय है और रूढ़ि अर्थ में 'हिन्दी की वर्णमाला' का द्योतक है।[2]

ॐ नम: के बाद 'सिद्धम्' शब्द है जो प्रकट में तो 'द्वितीयान्त-पद' प्रतीत होता है लेकिन वास्तव में है एक प्रकार का 'मांगलिक अर्थ वाला शब्द'। पाटियों के दूसरे सूत्र में 'सिद्ध' शब्द सिद्धो बरना-समामनाया के रूप में आया है जिसका व्याकरण की दृष्टि से अर्थ होता है कि 'वर्ण समाम्नाय' को ही 'सिद्धम्' या 'ओनम' समझो। अर्थात् वैदिक-वर्णमाला (वर्ण समाम्नाय) ही ओनम या सिद्धम् है। अस्तु उपरोक्त दोनों ही सूत्र 'वर्णमाला' के तीन नामों का परिचय कराते हैं और इंगित करते हैं कि ओनम:, सिद्धम् और वर्ण समाम्नाय, तीनों नाम वर्णमाला के पर्यायवाची हैं।

निष्कर्ष यह कि पाटियों के प्रारंभ में प्रयुक्त 'ओनामासीधम्' एक प्रकार का 'मंगलाचरण' भी है, और वर्णमाला के तीन नामों की तरफ भी इंगित करता है।

---

1. मंगले संशयारंभाधिकारानंतरेषु च।
   अन्वादेशे प्रतिज्ञायां प्रश्न साकल्ययोरपि॥ - हेमचन्द्र:
2. दृष्टव्य है पं. ज्वाला प्रसाद मिश्र कृत 'सारस्वत व्याकरण' की टीका पृष्ठ 15
   (प्रकाशक मुंशी नवल किशोर प्रेस लखनऊ)।

ओलम्

'ओलम' शब्द, उत्तर भारत के उन सभी क्षेत्रों में प्रचलित है, जहाँ किसी युग में महर्षि शाकटायन के व्याकरण, शर्ववर्मा के कातन्त्र (या काशकृतस्न व्याकरण अथवा पाटियों के शिक्षण का प्रचलन था। यह शब्द 'ओऽम् नम:' का तद्भव रूप है जो वर्ण-विपर्यय के कारण बना है। यह शब्द अपने रूढ़ि-अर्थ में देवनागरी की वर्णमाला का द्योतक हैं। वर्णमाला के प्राचीन नाम 'वर्ण समाम्नाय' और 'सिद्धम्' हैं। 'संस्कृत-बाल शिक्षा' नामक ग्रन्थ में वर्ण समाम्नाय के कुल वर्णों की संख्या 'द्विपंचाशत् (या बावन) बतलायी गई है :'

व्यञ्जनानि त्रयस्त्रिंशत्
स्वराश्चैव चतुर्दश ।
अनुस्वार-विसर्गौ च
जिह्वामूलीय एव च ॥ 1 ॥
गजकुंभाकृतेर्वर्ण:
प्लुतश्च परिकीर्तित: ।
एवं वर्णा द्विपञ्चाशन्
मातृकाया मुदाहृता: ॥ 2 ॥ [1]

तदनुसार 'पाटियों' के प्रारंभ में जो 'ओलम्' दिया हुआ है, वह भी निम्नानुसार है-

(1) चतुर्दश स्वर :
अ आ, इ ई, उ ऊ , रे रै (ऋ ॠ)

1 .. संस्कृत-बालशिक्षा (संवत् 1336 विक्रमी) ।

ले लै (ऌ ॡ), ऐ ऐ, ओ, आ ऊ (ओ औ)

(2) अनुस्वार - अंग् (अनंतन सोर)

(3) विसर्जनीय : आहा (अ: आईतीबीसारोजन्या)

(4) व्यञ्जनानि
का खा गा घं ना । चा छा जा झंना । टा ठा डा ढं ना ।
ता था दा धं ना । पा फा बा भं मा । जा रा ला वा ।

(5) जिह्वामूलीय - ᳵक : (अषैईतीजभ्यामोल्या)

(6) उपध्मानीय - ᳵ प : (पफईतीपदमान्या)

यह 'वैदिक वर्णसमाम्नाय' है। आगम (तन्त्रशास्त्र) में यही वर्णमाला ग्रहण की गई है। अन्तर केवल इतना है कि आगम की वर्णमाला में जिह्वामूलीय (ᳵक ᳵख) और उपध्मानीय (ᳵप ᳵफ) वर्णों को ग्रहण न किये जाने के कारण 'मातृका' (आगम की वर्णमाला में कुल पचास) वर्ण माने जाते हैं।

'ओलम्' नाम का कारण

वैदिक वर्णमाला में बावन वर्ण हैं जो 'अ' से प्रारंभ होकर 'ळ' ((ल) यह अक्षर ऋग्वेद के प्रथम मंत्र में प्रयुक्त हुआ है। यथा-'अग्निमीळे' इसका उच्चारण मराठी में 'ड़' या 'ल' के समान होता है।) पर समाप्त होते हैं। इनमें से यदि ᳵक ᳵख (जिह्वामूलीय) और ᳵप ᳵफ (उपध्मानीय) वर्णों को निकाल दिया जावे कुल वर्ण पचास रह जाते हैं। ये पचास वर्ण 'तन्त्र शास्त्र' की वर्णमाला (या मातृका) माने जाते हैं। इस वर्णमाला का प्रथमाक्षर 'अ' और अंतिमाक्षर 'ल' (या ळ) है। यदि 'अ' से लेकर 'ल' पर्यन्त सभी वर्णों का 'प्रत्याहार' बनाया जाये तो 'अ ल' बनता है। किन्तु प्रत्याहार का अंतिम वर्ण 'अनुनासिक इत्' होना चाहिए। तदनुसार 'अलम्' शब्द बनता है। श्रीपाद दामोदर सातवलेकर के अनुसार सम्पूर्ण वर्णमाला का वाचक 'ॐ' है।[9] अत: प्रकट में 'अलम्' को 'ओंलम्' ओंनम (या-ओलम्) कहा जाता है।

यदि ओंलम् को 'ॐ नम:' माना जाये तो इसका अर्थ ॐ (अर्थात् परब्रह्म) के लिए

नमस्कार होता है। ॐ चूँकि अव्यय है, अत: उसमें चतुर्थी विभक्ति का प्रयोग आवश्यक नहीं है। अत: ओलम्, ओंनम् या ॐ नम: - तीनों ही 'नाम' अपने-अपने स्थान पर सही हैं। चूँकि 'शास्त्र' भी 'लोकमत' को मान्यता देता है। अत: यदि लोक में वर्णमाला के लिए 'ओलम्' शब्द प्रचलित है, तो वह भी उचित ही है।

पहली-पाटी

सिध्धोबरना-समामनाया। चत्रो चत्रो दासादाऊसोरो ॥

पाटियों के पूर्व, भाषा की जिस वर्णमाला को 'ओनम्' या 'सिद्ध' बताया गया है, वह 'वर्णसमाम्नाय' नाम से भी प्रसिद्ध है और व्याकरण में सर्वमान्य है। इस वर्णसमाम्नाय के आरंभिक चौदह वर्ण स्वर कहलाते हैं वे ये हैं :

अ आ, इ ई, उ ऊ, ऋ ॠ, ऌ ॡ ए ऐ, ओ औ

दसें समाना ॥

उपरोक्त चौदह स्वरों में आरंभ के दशस्वर 'समान संज्ञक' हैं। अर्थात् आगे व्याकरण में इन्हें 'समान' कहकर प्रयुक्त किया जायेगा। यथा -

अ आ, इ ई, उ ऊ, ऋ ॠ, ऌ ॡ

तेषं दुत्या बरनो-निसि निसि बरनो ॥

इन समान संज्ञक वर्णों में जो दो-दो वर्णों के 'युग्म' (जोड़े) हैं, वे एक दूसरे के 'सवर्ण'ये हैं।

पूरभोरस्या-पारोदुरगा ॥

इन वर्णों के जोड़ों में - पहला वर्ण 'ह्रस्व' और दूसरा वर्ण 'दीर्घ' कहलाता है। यथा-

ह्रस्व - अ-इ-उ- ऋ - ऌ ।
दीर्घ - आ-ई-ऊ - ॠ - ॡ ।

सारो बरना-बरजो नामी ॥

इन पूर्वोक्त वर्णों में 'अवर्ण' (अ-आ) को छोड़कर शेष सभी स्वर 'नामी' कहलाते हैं। यथा-

इ ई, उ ऊ, ऋ ॠ, ऌ ॡ, ए ऐ, ओ औ

इकरादैनी-संधिकरानी ॥

'एकारादि चारों वर्ण' संध्यक्षर हैं। अर्थात् ए-ऐ और ओ-औ- ये चारों वर्ण 'सन्ध्यक्षर' (दो अक्षरों के मेल से बने अक्षर) कहलाते हैं।

कादैनी विंज्यानानी

'वर्ण समाम्नाय' के 'क' से लेकर लंछे तक से सभी वर्ण 'व्यञ्जन' कहलाते हैं।

तेबरको पंची पंचा

इन व्यञ्जनों के पाँच वर्ग है जिनमें से प्रत्येक में पाँच-पाँच वर्ण हैं।

बरगानामी परथम दुत्या सकुचांहेचा घोषाघोषु पतोर नौ ॥

इन वर्गों में से (पहले पच्चीस वर्णों के) प्रथम और द्वितीय वर्ण 'अघोष' कहलाते हैं। यथा -

क-च-ट-त-प
ख-छ-ठ-थ-फ } = अघोष वर्ण

शेष वर्णों को 'घोषवन्त' कहते हैं।

अनुनासीषा नैगरनामा ॥

उपरोक्त पाँचों वर्गों के अन्तिम पाँचों वर्ण -
ङ ञ ण न और म 'अनुनासिक' कहलाते हैं।

अंतूस्थां जारालावा ॥

य र ल और व 'अन्त:स्थ' संज्ञक हैं।

ऊषमान सकुचाँहा ॥

श ष स और ह- ये चार वर्ण 'ऊष्माण' कहलाते हैं।

आईतीबीसारोजन्या ॥

'अ:' यह वर्ण 'विसर्जनीय' कहलाता है।

अषईती जभ्यामोल्या ॥

ᳵक और ᳵख - ये दोनों वर्ण 'जिह्वामूलीय' हैं।

प फ ई ती पदमान्या ॥

ᳶप और ᳶफ -ये दोनों वर्ण 'उपध्मानीय' हैं।

अनंतन सोर ॥

'अं' यह अनुस्वार है।

पूरभोपलीरथो पाला है पाली पदं ॥

जिसके पूर्व में 'उपसर्ग', अन्त में 'प्रत्यय' (या विभक्ति) हो, तथा जिससे किसी 'अर्थ' की

उपलब्धि हो - वह 'पद' कहलाता है। यथा-आहार, गच्छति

विंज्यानामी सुरं पूरं वरनऐ नैतूं ॥

व्यञ्जनों में निहित 'अ' की ध्वनि, मात्र उच्चारण के लिए है। अन्यथा वे स्वरहीन हैं।

अनंतकरमैलं विसलैषजैत ॥

इन सभी स्वरों और व्यञ्जनों का विश्लेषण सावधानीपूर्वक करना चाहिए।

लिषौ पचोरा दुरगन संधी ॥

इन सभी बातों को 'लोक परंपरा' के अनुसार ग्रहण करने पर ही सिद्धि प्राप्त होती है।

ऐती संधौ सूतरता ॥ परथम संधि समापता ॥

इस प्रकार जिन शब्दों का आले संधि प्रकरण में प्रयोग होना है - उनका संज्ञा विवरण समाप्त हुआ।

॥ पहली पाटी पूर्ण ॥

दूसरी-पाटी

समानिसबरनो ॥ दुरग भवंती ॥ प्रहास लोपे ॥

यदि किसी 'समान संज्ञक वर्ण' के बाद वही वर्ण आये, तो बाद वाले वर्ण का लोप हो जायेगा और पूर्व तथा पर, दोनों ही वर्ण मिलकर अपने 'दीर्घ रूप' को जन्म देंगे। यथा -

अ + अ - आ	इ + इ - ई
अ + आ - आ	इ + ई - ई
आ + अ - आ	ई + इ - ई
आ + आ - आ	ई + ई - ई
उ + उ - ऊ	ऋ + ऋ - ॠ
उ + ऊ - ऊ	ऋ + ॠ - ॠ
ऊ + उ - ऊ	ॠ + ऋ - ॠ
ऊ + ऊ - ऊ	ॠ + ॠ - ॠ

विशेष : इन सूत्रों से 'दीर्घ' (या प्रश्लिष्ट) संधि का नियम ज्ञात होता है।

अबरनई बरनैयौ ॥ ऐबरनै ऐ ॥ ओबरनै वो ॥
री बरनै आलू ॥ ली बरनै कालू ॥

यदि 'अ' वर्ण के बाद 'इ' आये तो 'ए' बन जाता है। 'उ' वर्ण आये तो 'ओ' बन जाता है। 'ऋ' वर्ण आये तो 'अर' बन जाता है। ऌ वर्ण के आने पर 'अल्' हो जाता है।

यथा :

1 - अ + इ - ए।
आ + इ - ए।
अ + ई - ए।
आ + ई - ए।

2- अ + उ - ओ।
अ + ऊ - ओ।
आ + उ - ओ।
आ + ऊ - ओ।

3- अ + ऋ - अर्।
आ + ऋ - अर्।
अ + ॠ - अर्।
आ + ॠ - अर्।

4- अ + ऌ - अल्।
आ + ऌ - अल्।
अ + ॡ - अल्।
आ + ॡ - अल्।

विशेष - इन सूत्रों से 'गुण संधि' का बोध होता है।

ऐकारे ऐकारे चा ॥ ओकारे ओकारे चा ॥

यदि 'अ या आ' के बाद ए-ऐ या ओ-औ आये तो क्रमश: 'ऐ' और 'औ' वर्ण बनते हैं।

यथा - अ + ए - ऐ
आ + ए - ऐ
अ + ऐ - ऐ
आ + ऐ - ऐ

अ + ओ - औ
आ + ओ - औ

अ + औ - औ
आ + औ - औ

विशेष - इन सूत्रों से 'वृद्धि संधि' का बोध होता है

ऐवरनै जिम्मिसवरनै ॥ निच पर लुप्या ॥
वंभूबरना ॥ रिंव्विर बरना ॥ लिंम्मिर बरना ॥

- यदि इ ई के बाद 'अ-आ' आये तो 'य' बन जाता है। उ-ऊ के बाद अ-आ आने पर 'व' बन जाता है। ऋ-ॠ के बाद 'अ आ' आने पर 'अर' बन जाता है ऌ ॡ और के बाद अ-आ आने पर 'ल' बन जाता है। यथा -

इ + अ - य उ + अ - व
ई + अ - य ऊ + अ - व
इ + आ - या उ + आ - वा
ई + आ - या ऊ + आ - वा
ऋ + अ - र ऌ + अ - ल
ॠ + अ - र ॡ + अ - ल
ऋ + आ - र ऌ + आ - ला
ॠ + आ - रा ॡ + आ - ला

विशेष - ये सूत्र 'यण' 'संधि' का बोध कराते हैं।

ऐजै आजू ॥ वो वै आवू ॥

यदि ए-ऐ, औ-औ के बाद कोई अन्य स्वर आये तो क्रमश: अय्-आय् तथा अव्-आव् बन जाते हैं।

यथा -

ए + अ - अय्
ऐ + अ - आय्
ओ + अ - अव्
औ + अ - आव्

विशेष - ये सूत्र 'अयादि संधि' का बोध कराते हैं।

आधीमानजमानालोपे ॥ पालपदंते ॥ नामा लोपे

इसिविरि करते ॥ लुकंभकारे ॥

यदि ए या ओ के बाद 'अ' आये तो उसका लोप हो जाता है और उसके स्थान पर अवग्रह (ऽ) रख दिया जाता है तथा ए या ओ का उच्चारण सुरक्षित रहता है ।

यथा - ए + अ - ए ऽ ।
ओ + अ - ओ ऽ ।

विशेष - यह 'पूर्व रूप' संधि का लक्षण है ।

॥ ना विंजाने ॥ सुरान संधी ॥

किसी 'स्वर' के बाद व्यञ्जन आने पर संधि नहीं होती । यथा -

अ + क् - अक्
अ + च् - अच्

ऐती संधौ सूतरता । दुरती संधि समापता

इस प्रकार उपरोक्त सूत्रों द्वारा स्वर-संधियों का प्रकरण समाप्त हुआ ।

॥ इति दूसरी पाटी पूर्ण ॥

तीसरी-पाटी

तीसरी-पाटी के द्वारा 'प्रगृह्य' और 'प्रकृतिभाव' की शिक्षा दी जाती है । तीसरी - पाटी के सूत्र एक प्रकार से 'निषेध सूत्र' हैं ।

ओदन्ता अनि अनिपंता ॥ सिरविरकरता ॥

जिसके अन्त में 'ओ' हो, ऐसे सम्बोधन शब्द के बाद यदि अ-इ-उ आये तो संधि नहीं होती - प्रकृतिभाव रहता है । यथा -

अहो + ईशा: - अहो ईशा: ।

दुरवचनामीनौ ॥ गुरवचनामीनौ ॥
वौहवचनामीनौ ॥

ईकारान्त, ऊकारान्त और एकारान्त द्विवचन शब्दों के अन्त में कोई स्वर आये तो भी संधि नहीं होती 'प्रकृतिभाव' रहता है । यथा -

हरी + एतौ - हरी एतौ ।
विष्णू + इमौ - विष्णू इमौ ।
गङ्गे + अमू - गङ्गे अमू ।

यदि किसी को 'दूर' से पुकारा गया हो तो भी संधि नहीं होगी । यथा -

आगच्छकृष्ण + अत्र गौश्चरति ।
- आगच्छ कृष्ण ३ अत्र गौश्चरति ।

प्रस्तुत उदाहरण में कृष्ण को दूर से पुकारा जाने के कारण 'कृष्ण' शब्द का अन्तिम अक्षर 'अ' लुप्त हो गया है । अत: उसकी 'प्रगृह्य संज्ञा' हो जाने के कारण कृष्ण + अत्र में संधि नहीं हुई ।

यही नियम 'बहुवचनान्त पद' के बाद किसी स्वर के आ जाने पर भी लागू होता है। यथा -

अमी + ईशा: - अमी ईशा: ।

यहाँ - 'अमी' (बहुवचनान्त) के बाद 'ईशा:' की ई आने पर भी संधि नहीं हुई।

आनमानपतिस्टां चा ॥

एक 'स्वर' वाले 'निपात' के बाद यदि कोई स्वर 'इ' इत्यादि आये तो भी संधि नहीं होगी । यथा -

इ + इन्द्र: - इ इन्द्र : ।
उ + उमेश: - उ उमेश: ।

इस प्रकार और भी उदाहरण हैं, जिनका यहाँ 'उपदेश' नहीं किया गया ।

ऐति संधौ सूतरता ॥ तिरती संधि समापता ॥

इतनी संधियाँ सूत्रानुसार बतायी गईं । तीसरी संधि समाप्त हुई एवं तीसरी पाटी पूर्ण।

चौथी -पाटी

चौथी पाटी के अन्तर्गत 'दो व्यंजनों' के आपसी मेल से होने वाली 'संधियों' को समझाया गया है। तद्नुसार

बरग परथमा पूजते ॥ सोर घोषावाता सू ॥
आनं तिरथिया आनं ॥

अर्थात् यदि किसी 'पद' का अंतिम अक्षर पंचवर्गों में से किसी एक वर्ग का प्रथम अक्षर हो, और उसके बाद किसी दूसरे 'पद' का प्रथमाक्षर कोई 'स्वर' या 'घोषवर्ण' हो; तो पहले पद का अंतिम अक्षर अपने ही वर्ग के तीसरे 'अक्षर' में परिवर्तित हो जाता है। यथा-

वाक् + अर्थ: - वागर्थ:

-इस उदाहरण में 'वाक्' पद का अंतिम अक्षर 'क्' क वर्ग का प्रथम वर्ण है। इसके बाद स्वर 'अ' आया है। अत: क् अपने वर्ग के तीसरे व्यंजन 'ग' में परिवर्तित हो गया।

दूसरे उदाहरण में 'वाग् वद्ति' को समझाया गया है। वाक् पद का अंतिम वर्ण 'क्' क वर्ग का प्रथम व्यञ्जन है। इसके बाद घोषाक्षर 'व' के आने से 'क्' अपने वर्ग के तीसरे व्यंजन 'ग्' में परिवर्तित हो गया।

वाक् + वदति - वाग्वदति
पंचै पंचैभ्यामं ॥ सोर तिरथिया अतनेवा ॥

अर्थात् 'पदान्त वर्ण' वर्ग का प्रथम व्यंजन हो और उसके बाद किसी दूसरे (या उसी वर्ग) का पाँचवा व्यंजन (अनुनासिक) आये तो प्रथम व्यंजन (तीसरे की बजाय) पाँचवा बन जाता है। यथा-

तत् + न: - तन् न : (या तन्न :)
वाक् + मय: - वाङ्मय:

वरग परथमा भऐ सुषारी लेवा ॥
सोर जोर पिचकारी नेवा ॥

यदि वर्ग के प्रथमाक्षरों के बाद 'श' आये (और श के बाद कोई स्वर या य-व-र हों) तो 'श' का 'छ' बन जाता है। यथा -

तत् + शिव: - तच्छिव :

त्रभू आऐ कालं ॥ पारारूपं ॥ जगतसरूपं ॥

अर्थात् यदि वर्ग के प्रथम व्यंजन के बाद 'ह' आये तो प्रथम व्यंजन जिस वर्ग का हो, उसी वर्ग का चौथा वर्ण हो जाता है। ऐसा तभी होगा जबकि प्रथमाक्षर को उसी वर्ग का 'तीसरा व्यंजन' कर दिया गया हो।

यथा- वाक् + हरि: - वाग्घरि : ।

इस उदाहरण में पदान्त 'क्' (क वर्ग का) प्रथम व्यंजन है। इससे बाद हरि: का 'ह' आया है। अत: पहले क् का 'ग्' बना फिर 'ह' के स्थान पर कवर्ग का चौथा अक्षर 'घ' बनकर 'वाक्हरि:' का 'वाग्घरि:' हो गया।

टंकारे लाचट वर्गेषु ॥

- यदि 'त्' के बाद 'ज्' या 'ल्' आये तो 'त्' को 'ज्' या 'ल्' कर दिया जाता है।

यथा -

जगत् + जननी - जगज्जननी।
तत् + लीन: - तल्लीन: ।

चनुछे अंनुना ॥ पनुफे गनुना ॥ रसोपढाया ॥ जसोपढ़ाया ॥

यदि 'ञ्' के बाद 'श्' आये तो दोनों के बीच में 'च्' आ जाता है।

यथा - वज्रिञ् + श्नथिहि - वज्रिञ्च्छ्नथिहि

लेवंता ॥ तथे सुकारे ॥ पफे सुकारे ॥

- यदि पदान्त में 'न्' हो और उसके बाद में 'च छ, ट ठ, तथ' (वर्ग के प्रथम द्वितीय वर्ण) आयें तो 'न्' के स्थान में अनुस्वार (.) और च छ, ट ठ त था के स्थान

में क्रमश: श च, श छ, ष्ट, ष्ठ और स्थ हो जाते हैं। यथा -

विद्वान + छात्र : - विद्वांश्छात्र:
पुमान् + ठक्कुर : - पुमांष्ठक्कुर :

लीलं झाझं ॥ झझन सुकारे ॥

यदि पदान्त 'न्' या 'ञ्' के बाद 'श्' या 'च-छ-ज-झ-ञ्' में से कोई वर्ण आये तो 'न्' का 'ञ्' बन जाता है।

यथा - भवान् +शूर : - भवाञ् शूर:

षुन गऐ षरग सनीचरु वारे ॥

अर्थात् पदान्त 'च' या 'ञ' के बाद 'श' आने पर 'श' के स्थान में 'छ' हो जाता है। यथा

तत् + शम्भु : - तच्छंभु:

डिढं पुलिस्टं कारेषू ॥

यदि पदान्त 'न्' के बाद 'ड' या 'ढ' हो तो 'न्' का 'ण्' हो जाता है। यथा -

दन् + ड: - दण्ड : ।
षन् + ढ: - षण्ढ : ।

मौनसमारे विंजाने ॥

यदि पदान्त 'म' के बाद कोई व्यंजन आये तो 'म्' का अनुस्वार हो जाता है।

यथा - गृहम् +चलति - गृहंचलति ।
बरगा सुबरगा ॥ पंचमहुरबा ॥

यदि पदान्त 'म्' के बाद कोई भी व्यंजन (पाँचों वर्गों में से कोई एक) आये तो 'म्' के स्थान पर (जिस वर्ग का कोई व्यंजन आया है उसी का) पाँचवा अनुनासिक हो जाता है। यथा -

गीतम् + गीयते - गीतङ्गीयते
जलम् + देहि - जलन्देहि

जलम् + पिवति - जलम्पिवति
शत्रुम् + जयति - शत्रुञ्जयति

ऐती संधौ सूतरता ॥ चतुरती संधि
समापता ॥ पाटी चौथी पूर्न ।

- इस प्रकार सूत्रों के द्वारा व्यंजन संधि समझायी गई। चौथी संधि और चौथी पाटी पूर्ण हुई।

पाटियों की प्रासंगिकता व उपयोग

पाटियों का मुख्य-विषय 'व्याकरण' की प्रारंभिक-शिक्षा है।

व्याकरण को 'वेद' (अर्थात् ज्ञान) के प्रमुख छै अंगों में से एक माना जाता है। 'पाणिनीय-अष्टाध्यायी' के महान् भाष्यकार और 'योगदर्शन' के प्रणेता महर्षि पतंजलि के अनुसार 'जो व्यक्ति व्याकरण नहीं जानता वह भाषा की 'शब्दराशि' को देखता हुआ भी नहीं देखता है तथा सुनकर भी नहीं सुनता।'[1] दूसरे शब्दों में, व्याकरण - ज्ञान के अभाव में भाषा के तत्वार्थ को नहीं जाना जा सकता और व्याकरण रहित प्रयोगों के कारण भाषा के अर्थ का 'सत्यानाश' हो जाता है।

यद्यपि वर्तमान में भी व्याकरण की शिक्षा दी जाती है। लेकिन कब ? जबकि छात्र को पाठशाला में प्रवेश लिए हुए चार-पाँच वर्ष बीत जाते हैं और उसे व्याकरण रहित शिक्षा का अभ्यास हो जाने के कारण भाषा में 'गलत -प्रयोगों' की आदत सी पड़ जाती है।

कुछ लोगों का 'तर्क' है कि प्राथमिक स्तर के विद्यार्थियों को 'व्याकरण' की शिक्षा देने से उनके मन पर अनावश्यक बोझ बढ़ जायेगा। यह कथन भ्रममूलक है। लेखक का अनुभव है कि शैशव काल के पश्चाद्वर्ती वर्षों में यदि बालक को व्याकरण की प्रारंभिक शिक्षा दे दी जाये तो उसे हानि की बजाय लाभ अधिक होता है। उसके मस्तिष्क के कुछ इस प्रकार के संस्कार बन जाते हैं कि अगली कक्षाओं में व्याकरण पढ़ते समय उसे तनिक भी कठिनाई का अनुभव नहीं होता।

चारों पाटियों में से 'पहली-पाटी' उन शब्दों का नामकरण करती है, जिनका प्रयोग अगली कक्षाओं के व्याकरण में होता है। ये 'शब्द', वे परिभाषिक शब्द हैं जिन्हें प्रारंभ में

ही जान लेने से, उनके प्रयोगों के अवसर पर उन्हें समझने में दिमाग पर जोर नहीं पड़ता। इन पारिभाषिक शब्दों का सर्वाधिक प्रयोग 'संस्कृत भाषा' के व्याकरणों में होता है। ओनम, सिद्धम्, वर्ण समाम्नाय स्वर, व्यंजन, समान सवर्ण, अनुस्वार, विसर्ग, पंचवर्ग, संध्यक्षर, अन्त:स्थ, ऊष्माण, जिह्वामूलीय, उपध्मानीय, नामी, ह्रस्व-दीर्घ-प्लुत, घोष, अघोष - इत्यादि पारिभाषिक शब्दों को उनके लक्षणों सहित समझाया गया है।

दूसरी पाटी में उन 'संधियों' को समझाया गया है जो 'दो स्वरों' के आपसी मेल के कारण होती हैं। ऐसी स्वर-संधियों में प्रमुखत: दीर्घ, वृद्धि, गुण, यण्, पूर्वरूप, पररूप और अयादि -संधियों पर विचार किया गया है।

तीसरी पाटी में 'प्रकृतिभाव' को स्पष्ट किया गया है।

चौथी पाटी- व्यंजन -संधि के प्रमुख भेदों की शिक्षा देती है।

पाटियों में 'विसर्ग-संधि' की शिक्षा से सम्बन्धित कोई सूत्र नहीं है। इसका कारण संभवत: यह है कि लोक भाषा में 'विसर्ग' से उत्पन्न होने वाली संधियों का 'अभाव' है और पाटियों का मूल-उद्देश्य 'भाषा' की शिक्षा देना है, न कि संस्कृत व्याकरण की शिक्षा देना।

एक बात विचित्र है। पाटियों में प्रयुक्त पारिभाषिक शब्दावली वैदिक व्याकरण से काफी कुछ मिलती है। 'वेद' को समग्र भारतीय ज्ञान और भाषाओं का 'मूल-स्त्रोत' माना जाता है। अत: प्रतीत होता है कि 'पाटियों का आदि प्रवर्तक' संभवत: भाषा के साथ-साथ वैदिक व्याकरण का भी थोड़ा सा ज्ञान देना चाहता होगा। अन्यथा, वह पाणिनीय व्याकरण के पारिभाषिक-शब्दों की बजाय वैदिक व्याकरण के संज्ञाशब्दों का प्रयोग क्यों करता?

निष्कर्ष यह कि 'पाटियों' को संशोधित और संपादित करके हम उन्हें आज के सन्दर्भ में भी उपयोगी बना सकते है, और प्राथमिक स्तर के छात्रों को इनके माध्यम से व्याकरण की बहुत कुछ शिक्षा दे सकते हैं।

1. व्याकरण शास्त्र का संक्षिप्त इतिहास पृष्ठ - 113

चरनाइके

बुन्देलखण्ड में यह शब्द 'चन्नाइके' या 'चिन्नाइके' नामों से प्रचलित है। यह बहुवचनान्त है। एकवचन में इसे ''चन्नाइकौ'' कहते हैं।

बूढ़े-पुरानों का कथन है कि 'चन्नाइके' महर्षि चाणक्य के राजनीति-सूत्र हैं। संवत् 1803 विक्रमी में लिखी एक पाण्डुलिपि से इस कथन की पुष्टि भी होती है। यह पाण्डुलिपि सात अध्यायों में पूर्ण हुई है, और प्रत्येक अध्याय की पुष्पिका में 'इति श्री वृद्ध चानिक्ये राजनीति सास्त्रें' के साथ प्रथम या द्वितीयोध्याय : लिखा हुआ है।[1]

किन्तु इन सातों अध्यायों में 'राजनीति' की अपेक्षा 'नीति' सम्बन्धी श्लोक अधिक हैं। दूसरे, इसकी भाषा संस्कृत है।

'चरनाइके' की एक अन्य-प्रति किसी 'देवमुनि' नामक व्यक्ति द्वारा अनूदित है, जिसमें बुन्देली भाषा के तेतीस दोहे है [2], और अन्तिम दोहा इस प्रकार है -

इतिश्री लघु चरनाइके, राजनीत कौ भाउ।
भाषा कीनी देवमुनि, भए सात अध्याउ॥

इस दोहे द्वारा भी यही विदित होता है कि 'चरनाइके' राजनीति-विषयक शिक्षा-सूत्र हैं जो सात अध्यायों में विभाजित हैं और देवमुनि ने 'भाषा' में अनुवादित करके उनके सारांश को केवल बत्तीस दोहों में सीमित कर दिया है।

इस प्रति के अधिकांश दोहे 'पूर्वोक्त वृद्ध चानिक्य' के सातों अध्यायों के कतिपय श्लोकों के भाषानुवाद मात्र है। कुछ दोहे अन्यत्र से संगृहीत प्रतीत होते हैं।

'पाटी चरनाइके' नामक वि. संवत् 1890 की रामचन्द्र कुडरा की प्रति में 'बड़ी ओनिमि' नाम से जिन पाँचवी-छठी और सातवीं पाटियों को लिपिबद्ध किया गया है- वे

भी एक प्रकार से 'नीति-सम्बन्धी दोहे' ही हैं। उनकी विषय वस्तु भी लगभग पूर्वोक्त वृद्ध तथा लघु चरनाइकौ जैसी ही है। लेकिन किन्हीं संस्कृत श्लोकों का भाषानुवाद न होकर-एक मौलिक तथा परम्परागत रचना प्रतीत होती है। [3]

इसके अतिरिक्त, बूढ़े-पुरानों के मुख से भी जो छिट-पुट नीति वाक्य सुनने को मिले, वे भी उनके अनुसार चन्नाइके ही थे। वे इस प्रकार है -

न ना रे - नमस्कार गुरूदेव कु कीज:
ट टा रे - ओछे टट्टु को जन चढीय
ठ ठा रे - सी ठाकुर की सेवा कीज
ड डा रे - डांईन को मोहो कारो कीज
ढ ढा रे - ढोर मोरप चोट न कीज
रा राा रे - ररा में जाय तडातड दीज
त ता रे - तरनी सीति वातन कीज
थ था रे - थान छोडि कुथान न जईय
द दा रे - दाति न दान सवारो कीज
ध धा रे - धनजोवन को गर्भ न कीज
न ना रे - नमस्कार गुरूदेव कु कीज
प पा रे - ----------[4]
फ फा रे - फुलिवेलिय हरी पर वास न जईय:
ब बा रे - वनवारी के वग न मुसीय
भ भा रे - भाइी आयो आदर लीज
म मा रे - माता-पीता की सेवा कीज
य या रे - यारी करीक दगा न दीज
र रा रे - राम नाम को सुमीरन कीज
ल ला रे - लक्ष्मी जु को आदर कीज
ववा रे - उत्तम घर ज वसेरो लीज
स सा रे - स ने इी आयो आदर लीज
ष षा रे - षीरी षाड के भोजन कीज :
स सा रे - साद संत की सेवा कीज :

ह हा रे - ----------
ल ला रे - ----------
क्ष क्षा रे - ----------

ऐसी स्थिति में यह निर्णय कर पाना कठिन है कि वस्तुत: 'चरनाइके' थे कैसे ?

भारतीय नीतिशास्त्र पर महर्षि चाणक्य की विचारधारा का पर्याप्त प्रभाव है और जैसा कि डॉ. काशीप्रसाद जायसवाल का विचार है, यदि वास्तव में ही चाणक्य की जन्मभूमि पन्ना जिले का 'चणका'(वर्तमान 'नचना') नामक ग्राम थी, तब तो निश्चित सा ही है कि 'बुन्देलखण्ड की प्राथमिक-शिक्षण की परिपाटी' के अन्तर्गत पढ़ाये जाने वाले 'चरनाइके' महर्षि चाणक्य के ही नीतिश्लोक थे जो भाषानुवादित होकर 'चरनाइके या चन्नाइके' के नाम से प्रसिद्ध हो गये। [5]

इस विषय में एक अन्य विचार भी है जिसे नकारा नहीं जा सकता है। डॉ. प्रभुदयाल अग्निहोत्री ने अपने 'पतंजलि कालीन भारत' नामक ग्रन्थ में 'चरणाख्या' शब्द का प्रयोग किया है।[6] 'चरण' एक प्रकार की शिक्षा संस्था थी जो 'गुरूकुल' के समतुल्य मानी जाती थी। 'चरण' की शिक्षा-परिपाटी 'चरणाख्या' कहलाती थी। चरणाख्या का अपत्य 'चरणाख्येय' बनता है। चरणाख्येय का प्रयोग यदि किसी विशेष पाठयक्रम के अर्थ में होता रहा होगा-तो उसका 'चरनाइके' या 'चन्नाइके' के रूप में प्रचलित हो जाना-कोई आश्चर्य की बात न होगी। वैसे भी 'चन्नाइके' शब्द चाणक्येय की तुलना में 'चरणाख्येय' से अधिक निकट है। तब फिर हम यह क्यों न मानकर चलें कि चरनाइके 'चरणाख्येय' का अपभ्रष्ट रूप है-चाणक्येय का नहीं। लोक में 'पाटी-चन्नाइके' समास प्रचलित है और दोनों की एक साथ चर्चा की जाती है। फिर यह भी लगभग निश्चित ही है कि 'पाटियाँ' चाणक्य और पाणिनि से भी बहुत पूर्व से चली आ रही है। अत: चन्नाइके भी पुरातन शिक्षा पद्धति के विशिष्ट अंग है जो अज्ञानता, भ्रम या उच्चारण-साम्य के कारण-'चाणक्य' से जुड़ गये और उन्हीं के नीतिवाक्य समझे जाने लगे।

'चरनाइके' महर्षि चाणक्य के नीतिश्लोक है, या 'परम्परागत नीति सूत्र'-इस विवाद से प्रत्यक्षत: कोई/लाभ नहीं है। लाभ तो इस बात में है कि 'चरनाइके' हमारे शिशु छात्रों के लिए उपयोगी है या नहीं। यदि इन्हें पढ़ाया जाना विद्यार्थियाँ के चरित्र निर्माण में सहायक सिद्ध हो सकता है, तो हम इनका 'पाठयक्रम' में उपयोग क्यों न करें ?

वर्तमान पाठ्यक्रम में 'नैतिक शिक्षा' मात्र 'कागजों तक सीमित' रह गई है। यथार्थ में उसकी शिक्षा उपेक्षित-सी है। हम चाहें तो 'चरनाइकों' की काट-छाँट या उनका प्रासंगिकता के अनुसार संशोधन-संपादन करके-उन्हें विद्यार्थियों के लिए अधिक उपयोगी बना सकते हैं।

बड़ी ॐ निमि लिषी ॥

ॐ अंकाल मनमै सुमिरजै ।
नीके सगुन पयांनै दीजै ॥
मात पिता की सेवा कीजै ।
सरनै आऐ काढ न दीजै ॥
धनु बिढै के धर्म जु कीजै ।
अकेले हो परदेस न जैऐ ॥
बैरी के परसंग न रैऐ ।
फूल बाँध रावर न जैऐ ॥
डाइन के परसंग न रैऐ ।
घर आबै बैरी पर हरिऐ ॥
दासी के परसंग न रैऐ ।
इकचित होकै देउ मनै जै ॥
उधारै पुधार न कीजै ।
रिस मैं झूठी साष भरजै ॥
लछमी पछित उद्दिमु कीजै ।
इक मारग आपनै चल जै ॥
ओछे वरै न कन्या दीजै ।
अंन रतन कौ संगृह कीजै ॥
गरुवे कौं न बढाई दीजै ।
होड़ बाँध के वृछ न चढ़ जै ॥
काम करैतै बिलम न कीजै ।
षाटौ वाढै पाउ न दीजै ॥
नाराइन की सेवा कीजै ।
विचले दल कौ गर्व न कीजै ॥

ठाकुर सौ अरबाद न कीजै ।
ठाढे ठाढे वनजु न कीजै ॥
जाकौ ताकौ लीजै ताकौ दीजै ।
थाती धरकै लोभ न कीजै ॥
धन पाइ के धर्मजु कीजै ।
चोर जुवारी कौ संग न लीजै ॥
वंध मित्र दारा सुतसौ सीतल रहिजै ।
हो गरीब गारी को सहिजै ॥
ऐती संधौ स्तरता ।
पंचमी संधि समापता ॥
पाटी पाचइी पूर्न ॥ **5** ॥
पार ब्रह्म नाम भजौ ।
भजन करत न कावै लजौ ॥
अज्ञानै राषौ जिन अंग ।
ज्ञानै कौ निति कीजै संग ॥
गुर के चरन पखारै पीजौ ।
भोजन करा प्रसादैय लीजौ ॥
पूजौ भेंट चढ़ावो नीकी ।
तासौं जरन मिटै अब जीकी ॥
राजा ढिंग सेवक हो रैऐ ।
उन्वंति वचन कबू नहि कहिऐ ॥
अग्या होय सोइी कर कढिऐ ।
निस दिन सुष होइी पल धरिऐ ॥
सेवा करौ पिता की नीकी ।
सुफनै होइ न कबहू फीकी ॥
भीषम श्रृवन करी है जैसी ।
वनि आवै करियौ पुन तैसी ॥
पाँच पिता में ससुर जो जानौ ।
दुष दारद तिनहू कौ भानो ॥
ऐ पाँच पिता पालत है नंदन ।

आव सरीर सहै दुषु दंदन ॥
ऐती संधौ स्तरता ।
छठई संधि समापता ॥
पाटी छठई पूर्न ॥ **6** ॥
कामी कलही लाभ सौ प्रीत ।
अैसौ गुरकीनै विपरीत ॥
औरै गुर मुख करहु अनेक ।
अैसौ गुर परहरिअै ऐक ॥
नफर काइिली मूरष सिष्य ।
तजिऐ दूर नैन नहि दिष्य ॥
इनितै सुष स्वारथ नहिं होइी ।
तातै वेग परहरौ दोइी ॥
जु.वा जार अरु जोइि पराइी ।
जाहि लाज कुल होइि हसाइी ॥
घटै कान जस होवै छीन ।
तजिऐ तौन सोइि परवीन ॥
कलह घरन वैच लौ घोर ।
कपटी मित्र पुत्र घर चोर ॥
दिन ही दिन वाढै जं रार ।
सुरजन जौ पर हर है चार ॥
रिसिया साहिब जलवौ गाउ ।
फूटी नाउ आपनौ सांउ ॥
वैल मारनौ गाउक रांच ।
वुध्धवंते ऐ तजिहै पाँच ॥
नीच संग अरु गाँउ सगाइी ।
ऊ.षर खेत ववौ जिन भाइी ॥
नृप अरु स्वान जगाऐ दुष है ।
ऐषत तजै चतुर कह सुष है ॥
मित्र स्वारथी क्रोधिन नार ।
आफत रोग सेन मै जार ॥

लचिया काजी अंगी पाँच ।
ऐ सात तजै आवै नहि आँच ॥
विपता सत्र कुचालिन नार ।
वैरा ठाकुर मूरष जार ॥
अमली नर कुचाल कौ ठाठ ।
क्रम सौ ऐ परहरिऐ आठ ॥
नवधा भक्ति करै नित सुंदर ।
दस अवतार सोइिऐ मंदिर ॥
ऐती संधौ सूतरता ।
सप्तमी संधि समापता ॥
पाटी सातइि पूर्न ॥**7** ॥

क्ँवार वदी नौ सौमे सम्वत 1890 मुक़ाम दलीप नगर ॥ लिषतं प्रधान रामचन्द्र कुड़रा नै ॥

1. यह पाण्डुलिपि लेखक के संग्रह में सुरक्षित है ।
2. यह प्रति स्व. बाबूलाल गोस्वामी (पत्रकार) के निजी संग्रह में सुरक्षित है ।
3. यदि प्रति पुरातत्व संग्रहालय दतिया में सुरक्षित है ।
4. इस प्रकार के लिखित चरनाइकौ के दो पृष्ठ लेखक के संग्रह में सुरक्षित हैं । पृष्ठ फटा और जीर्ण होने के कारण कुछ अक्षरों के वाक्य रिक्त छोड़ने पड़े हैं-लेखक ।
5. अंधकार युगीन भारत का इतिहास ।
6. पतंजलि कालीन भारत वर्ष ।

शब्दार्थ : **ॐ अंकाल**-परमेश्वर का नाम, **नीके सगुन**-अच्छा शकुन विचारकर, **पयानै दीजै**-गमन करे, **सरनै आऔ**-शरण में आये हुए को, **काढ न दीजै**-भगाये नहीं, **धनुबिढैकै**-धन कमाकर, **परसंग**-सान्निध्य, **फूलबाँध**-फुलेल लगाकर, **रावर**-राजभवन, **डाइन**-दुष्ट स्त्री, **परिहरिऔ**-त्यागदे, **इकचित**-एकचित्त, **देउमनैजै**-देवताओं को प्रसन्न करै, उधारै **पुधार**-ऋण लेना, **रिस**-क्रोध, मान, **साष**-साक्ष्य, **पछित**-प्राप्ति के लिए, **उद्दिमु**-उद्यम, **मारग**-मार्ग, **आपनै**-अपना, **ओछे**-निकृष्ट, **वरै**-वर को, **अंनरतन**-अन्नरूपरत्न, **गरुवे**-घमंडी, **होड़बाँध**-शर्त बाँध, **विलम**-विलम्ब, **षाटौ वाढै पाउ**- गलत कदम, **नाराइिन**-भगवान, **विचले दल**-दोनों पक्षों से मिले हुए गुट, **ठाकुर**-शासक, **अरबाद**-बहस, **वनजु**-व्यापार, **ठाढे-ठाढे**-खड़े-खड़े, **जाकौ**-जिसका, **ताकौ**-उसका, **थाती**-धरोहर, **धरकै**-रखकर, **दारा**-स्त्री, **सीतल**-ठण्डे, **गारी**-अपशब्द, **सहिजै**-सहन कीजिये, **रहिजै**-रहिये, **पारब्रह्म**-परब्रह्म, **कावै लजौ**-किसी से न शर्माना, **अज्ञानै**-अज्ञानी को, अज्ञान को, **राषौ**-राखो, रखो, **अंग**-लिपटाकर, **ज्ञानै**-ज्ञानी को, ज्ञान को, **निति**-नित्य, **गुर**-गुरू, **पखारे**-धोकर, **प्रसादैय**-गुरू का उच्छिष्ट, आशीर्वाद, **नीकी**-उचित, **जरन**-जलन, **जीकी**-मन की, **राजाढिंग**-राजा के पास, **उन्वंति**-उन्नति, अपनी बड़ाई, **आग्या**-आज्ञा, **कढिऔ**-निकलिये, **सुफनै**-स्वप्न में, **फीकी**-निष्फल। **भीषम**-भीष्म, **श्रृवनकरी**-सुनी, पालन किया, **वनिआवै**-सफल हो, **दुष दारिद**-दु:ख दारिद्रय, **तिनहू कौ**-उन्हें, **आव**-आयुष्, **दुषुदंदन**-दु:खद्वन्द्व, **कामी**-विषयी, **कलही**-झगड़ालू, **गुरू कीनै**-गुरू बनाये, **औरै**-दूसरे को, **नफर**-दास, सेवक, **काइली**-आलसी, **मूरष**-मूर्ख, **दिष्य**-देखै, **सुष**-सुख, **तातै**-इसकारण, **परहरौ**-त्याग दो, **जुवा**-जुआ, **जार**-व्यभिचारी, **जोइ**-स्त्री, **पराई**-दूसरे की, **जाइ**-जाय, **लाज**-इज्जत, **कुल**-खानदान, **हसाई**-उपहास, **घटै कान**-प्रतिष्ठा कम हो, **जस**-यश, **छीन**-क्षीण, **तौन**-उसे, **परवीन**-चतुर, प्रवीण, **वैचलौ**-बिचालित होने वाला, **घोर**-घोड़ा, **घरचोर**-घर में चोरी कराने वाला, **वाढै**-बढै, **घरन**-पत्नी, **जंरार**-झगड़ा टंटा, **सुरजन**-चतुर, **रिसियासाहब**-रोष करने वाला अधिकारी, **जलवौ गाउ**- जलने वाला गाँव, **फूटी नाउ**-जिस नाव में छेद हो, **बैले मारनौ**-मरखा बैल, **बुध्धवंत**-बुद्धिमान, **तजिहै**-त्याग दे, **नीच संग**-बुरे व्यक्ति का साथ, **गांउ सगाइ**-अपने ही गाँव में विवाह सम्बन्ध, **ऊषर खेत**-जिस खेत में कुछ भी पैदा न हो, **ववौ**-बोओ, **नृप**-राजा, **स्वान**-कुत्ता, **जगाऐ**-जगाने से, **ऐषत**- ये छे चीजें, **चतुर कह**-चतुर को, **नार**-स्त्री, **आफत**-विपत्ति, **सेन**-सेना, **जार**-दोगला, **लचिया काजी**-लालची न्यायाधीश, **विपता**-विपत्ति, **सत्र**-शत्रु, **कुचालिन**-दु:श्चारित्र, **वैरा**-बहरा, **अमलीनर**-नशा करने वाला, **कुचाल कौ ठाठ**-बुरी संगत, **नवधा भक्ति**-नौ प्रकार की भक्ति, **दस-अवतार**-दशावतार, **सेइऐ**- सेवा कीजिए, **क्वाँर**-आश्विन मास, **वदी**-कृष्ण पक्ष, **सम्वत**-विक्रम संवत् ।

श्री गोपाल जू ।। त्र्प्रथां चरनाइिकौ लिष्यते ।।

त्र्प्रर्थ दर्वि विदया सुमति, निरधन पंचौ वात ।
विधना विविधि विचारिकै, गर्भ माह लिषिजात ।।1।।
चित्रगुपित्र विचित्रमति, कर्मत्र्प्रंक लिषिजात ।
जो मैटी नाही मिटै,जदपि गात मिटि जात ।।2।।
जो जाकौ हौनी लिषी, दुष सुष के परिवान ।
कर्म पांसि षैचै फिरै, सुयह कहि गऐ सुजान ।।3।।
जो विधि लिषी लिलाट मै, कै हू मिटै न त्र्प्रौर ।
जहाँ जाइ लैत्र्प्रावही, समदधार है जोर ।।4।।
सुषु चाहै विद्य़ा तजै, विद्या सुष कौ नासु ।
सुषु चाहै विद्या कहाँ, सुवि सुषहि निवासु ।।5।।
दुषु सुषु दाता कोऊ नहीं, मानि लेत नर कूर ।
जनम-जनम कृत भोगवै, जो विधि लिषे त्र्प्रंकूर ।।6।।
एक मात इक तात तै, बहुत भाँति नर हौइ ।
सवै ऐक से नाहि नै, वदली कंटक सोइ ।।7।।
बहुत पुत्र कुल होत ही, दुष-सुष के जेमूल ।
कुल मंडन ऐकू भलौ, हरै जु मन के सूल ।।8।।
सिंघिनिपुत्र सपुत्र जनि, सोवति पांइ पसारि ।
दस पूजा सौ ग्रधि के, धोवी लादै जाइ ।।9।।
वंस त्र्प्रगिन वन मै उठै, सववन डारै जारि ।
सतकुल मै उपजै कुमति, सवकुल डारै जारि ।।10।।
चंदन तरु की वास सौ, सव चंदन हो जात ।

कुल मै होइ सपुत्र जो, सवरौ कुटमु अघाइ ॥11॥
जोवन रूप विसाल कुल, विद्या विन नर सोइ।
सभा न सोहै विन गुनै, टेसू वासु न होइ ॥12॥
जाकौ सुत पंडित नही, दान सूर नहि होइ ।
कुल अधियारौ तासकौ, चन्द्र हीन निसि सोइ ॥13॥
लाड नाम वहु दुषहै ताड नाम सुष होइ।
लाडं छेव्रछा पुरिष, मंत्र सुमंत्री होइ ॥14॥
पाँच वरस लौं लाडिलौ, दसलौं ताड प्रमान।
जव सुत सोरा वरस कौ, गनिव्रै अापु समान ॥15॥
मेरु सिषिरि ऊ चौ नही, नीचौ नहि वलि लोकु ।
कुमति पारधी दूरि नहि, मिटै न मन कौ सोचु ॥16॥
रूप कोकिला वोलही, नारी जितहि सरूप ।
रूप कुरूप छिमां करौ, विद्या जितहि सरूप ॥17॥
हीरावुर ही जाइगे, सोचु करौ जिनि कोइ ।
ऊ चनीच गनिजै नही, विद्या लीजै सोइ ॥18॥
प्रथम चरन ठहराइ कै, तवै उठावै व्रौर ।
पहिलै कीलै जाइगा, तवै त्यागिजै ठौर ॥19॥
वैदु नदी राजा धनिकु, जहँ पंडितु नहि होइ ।
जहाँ पाँच जे नाहि नै, वहाँ वसौ जिनि कोइ ॥20॥
प्रथम नहीं सनमान जहँ, प्रीति न भै जहँ होइ ।
जहँ इतनै जे नाहि नै, वहाँ वसौ जिनि कोइ ॥21॥
कुलै वचावै ऐक है, कुटम दारु लै गाउ ।
जिनि पति कौ जौ भूमितजि, अापु काम निजु ठाउ ॥22॥
ज्वान परै सेवा करै, दुरवुधि छाडै संगु ।
मरघट विग्रहु भूपदल, जेभयनि के व्रंग ॥23॥
चाकरू पठव्रै जानियै, दुषमै वंधु विचारि ।
मित्र अापदा चीनियै, विपति कसौटी नारि ॥24॥
काल चाल दुरभिछ मै, लैनिवहै परिवारू ।
आषरि जगतु जै हीरचौ, सु करिया सिरजन हार ॥25॥
विपति कौजु जुधनु राषियै, धनुराषै थलु होइ ।

जौ पै राषै अापु ये धनु धारा फिरि होइ ॥26॥
मूरिषसिषिव्रारु मित्रसठ, वेगिपरिहरौ ताहि।
वसै सर्प घटमाझही, जव तव उठि वहु षाइ ॥27 ॥
दुरजन पुरजन कै विषै, वुधि चौगुनी जानि ।
साहस जानै षट गुनै, काम अ्रठ गुनै मानि ॥28॥
इक पंडित अरु न्रपति कौ गनिजै एकहि भेस ।
राजै पूजै देसमै पंडित देस विदेश ॥29॥
चलनु चलै सिंसार मै, वित्तु अापनौ जानि ।
दोऊ कुलनसत कुचालितै, सु यह कहि गऐ सुजान ॥30॥
संपति विपति लिलाट मै, जो विधि लिषिदऐ अंकूर ।
धीर पुरिष लै निर्वहै, कोइ कोइ मारग नूर ॥31॥
विभचारीत्रिय जानियै, तिन्है नगनिजै वाम ।
दुष सुष वे जानै नही, निसुदिन आठौ जाम ॥32॥
इतिश्री लघु चरनाइके, राजनीत कौ भाउ ।
भाषा कीनी देवमुनि, भऐ सात अध्याउ ॥33॥
(हस्तलेख-गिरवरदास संवत् 1815 वि मी)

शब्दार्थ : **अर्थ**-इष्ट, धन, **दर्वि**-द्रव्य, **विधना**-विधाता, **गर्भमाह**-गर्भ में, **चित्रगुपित्र**-चित्रगुप्त, **कर्मअंक**-कर्मफल, **गात**-शरीर, **परिवान**-प्रमाण, परिमाण, **पांसि**-पाश, **ग्रधि**-गधी, **षैचै**-खींचती हुई, **लिलाट**-ललाट, **कै हू**-कैसे भी, **लैआवही**-ले आता है, **समद**-समुद्र, **जोर**-बलवान, **निवासु**-निवास, **कूर**-मूर्ख, **कृत**-किया हुआ, **भोगवै**-भोगता है, **अंकूर**-शैशव, **नाहिनै**-नहीं, **मूल**-जड़, **कुलमंडन**-कुल की साख बढ़ाने वाला, **सूल**-काँटे, **सिंधिनि**-सिंहनी, **पांइपसारि**-पैर पसार कर, **बंस**-बाँस, **अगिन**-आग, **सतकुल**-अच्छा खानदान, **डारै जारि**-जला डालता है, **तरु** -तरु (पेड़), **वासु**-गन्ध, **टेसू**-छेवले का पेड़, **तासकौ**-उसका, **लाड**-वात्सल्य प्रेम, **ताड प्रमान**-ताड़ जैसा लंबा, **सोरा**-सोलह, **सिषिरि** -शिखर, **तवै**-तभी, **त्यागिजै**-त्यागिये, **डारैजारि**-जला डालती है, **सपुत्र**-सपूत, **आघाई**-संतुष्ट होना है, **कुटम**-कुटुम्ब, **योवन**-यावस, **वासु**-सुगंध, **दानसूर-दानशूर**-दान देने में अग्रणी, **ताड**-ताड़ना, **आपु**-स्वयं, **मेरू**-सुमेरू पर्वत, **पारधी**-शिकारी, **ठौर**-स्थान, **गनिव्रै**-गिनये, **विसाल**-बड़ा, **वैदु**-बैद्य, धनिकु, **कुलै**-कुल को, **कुटमदारू**-कुटुम्बवाला, **ज्वान परै**- जवानी आने पर, **मरघट**-श्मसान, **चाकरु**-नौकर, **पठअै**-भेजने पर, **चीनिये**-पहिचानिये, **कालचाल**-काल की गति, **दुरभिछ**-अकाल, **लैनिवहै**-विवाह कर ले जाता, **परिवारू**-परिवार, **आषरि**-आखिर, **जगतु**-जगत, **पुरजन**-नगर के लोग, **बिषै**-विषय, **षटगुने**-छ गुने, **एकहिभसे**-एकसमान, **राजै**-राजा को, **चलनु**-चलन, **वित्तु**-सामर्थ्य, **कुलनसत**-कुल का नाश होता है, **कुचालितै**-बुरे आधार से, **जो निधि**-जिस प्रकार, **अंकूर**-जन्म के समय, **निर्वह**-निर्वाह करता, **मारगनुरु**-पथ की शोभा, **वाम**-स्त्री, **जाम**-याम, **नाहिनै**-नहीं है, **भै**-भय, **ठाउ**-स्थान, **दुरवुधि**-दुर्बुद्धि, **करिया**-कृष्णवर्ण, **सठ**-शठ, **राषियै**-राखिये, **थलु**-प्रतिष्ठा, **ताहि**-उसे, **वेगि**-तुरन्त, **माझही**-भीतर, **सिरजनहार**-सृष्टा, **कुचालितै**-बुरे आचरण से ।

तेत्तीस-अक्षरी (चौंतीसी)[1]

पाटियों के 'खोज-अभियान' के समय अनेक ऐसे लोग मुझे मिले जो मेरे प्रश्नों के उत्तर देने के बजाय उलटे मुझसे एक प्रश्न का उत्तर पूछने लगते थे। उनका प्रश्न एक बत्तीस-अक्षरी छन्द से सम्बन्धित था जिसका अर्थ न तो वे स्वयं जानते थे और न उन्हें उस छन्द का अर्थ बताया ही गया था। हाँ, उन्हें वह छन्द पढ़ाया अवश्य गया था और उसका उपयोग भी बताया गया था।

दतिया के एक गहोई-वैश्य स्व. राधालाल सोहाने (तत्कालीन उम्र 80 वर्ष) ने चारों-पाटियाँ, तेरह लेखे और चरनाइके पढ़े थे। उनका कहना था कि मुझे यह छन्द बही खाता लिखने के लिए पढ़ाया गया था। छन्द अधोलिखित है -

श्रीरामचंद्रं गुनं सीलं तपा एकं जथा वधू।
आई ऊ भी झषै ठाढ़ी घटै छाड़ै वहै फया ॥

पढ़ने-सुनने में यह छन्द संस्कृत के विकृत और अपभ्रष्ट श्लोक जैसा प्रतीत होता है। अत: इसका गूढ़ार्थ या भावार्थ निकालना कठिन है। लेकिन जैसा कि स्व.राधालाल सोहाने ने संकेत दिया था और जिसकी पुष्टि बाद में अनेक वयोवृद्धों से भी हुई-यह छन्द बही खाते में खातेदारों के नामों के 'प्रथमाक्षर' लिखने के काम आता रहा है और एक प्रकार से 'नाम-सूचक-सूत्र' की भूमिका अदा करता रहा है। दतिया के कपड़ा व्यापारी पं. शिवदत्त दुबे ने भी इस बात का समर्थन किया है।

रामचन्द्र कुडरा ने अपनी पाण्डुलिपि 'पाटी-चरनाइके' के प्रारंभ में भी इस छन्द को

उल्लिखित किया है। अत: प्रमाणित है कि इस छन्द का उपयोग बहुत पूर्व से होता चला आ रहा है।

इस छन्द में निम्नलिखित स्वर-व्यञ्जनों का प्रयोग हुआ है -

आ ई ऊ ए
कं षै (ख) गु घ
चं छा ज झ
टै ठा डै ढी
त था द्रं धू नं
पा फ ब भी म
या रा लं व (श्री) सी है।

ये संख्या में कुल तेतीस हैं। इनमें से 'श्री' को निकाल दिया जाये तो ये सभी अक्षर कुल बत्तीस होते हैं। ये सभी अक्षर 'बुन्देलीभाषा' में प्रयुक्त होते हैं। इनमें ऋ, ॠ, ऌ, ल, ऐ, ओ, औ, त्रं, अ:, उ, ञ, ण, क्ष और त्र को सम्मिलित क्यों नहीं किया गया, इसका उत्तर अनुपलब्ध है।

दलीपनगर (दतिया) के लाला 'बाजूराइ' की प्रथम भाद्रपद 6 संवत् 1890 विक्रमी के दिन लिखी हस्तलिखित प्रति मेरे संग्रह में उपलब्ध है। 'चौंतीसी' नामक प्रति में कुल चौंतीस दोहे लिपिबद्ध हैं जो किसी अज्ञात व्यक्ति की (संभवत: परम्परागत) रचना है। प्रथम दोहा 'श्री' से आरम्भ किया गया है। शेष में से शुरू के बत्तीस दोहे पूर्वोक्त 'बत्तीसाक्षरी छन्द' के अक्षरों से प्रारंभ किये गये हैं। चौंतीसवा दोहा ग्रन्थ की 'फल श्रुति' है।

इस बत्तीसाक्षरी के तेतीसवें दोहे में कहा गया है कि हमें यह 'नर देह' (मनुष्ययोनि) मिली है तो हमें इसका सदुपयोग भी करना चाहिए। हमें तेतीस अक्षरों को भली प्रकार से समझ लेना चाहिए। इनमें भी दो अक्षर ऐसे हैं जो सम्पूर्ण जगत् के स्वामी हैं।[2]

अन्तिम चौंतीसवें दोहे में कहा गया है कि सम्पूर्ण वर्णमाला में ये तेतीस अक्षर मुख्य हैं। ये समस्त विद्याओं के 'जनक' (आदप्रवान) हैं। अत: तेतीसों अक्षरों को प्रेमपूर्वक हृदय में बिठा लेना चाहिए और इनका कभी विस्मरण नहीं करना चाहिए।[3]

'आगम' (तंत्र शास्त्र) के अनुसार ये तेतीस अक्षर 'तेतीस देव शक्तियों' के 'बीजाक्षर' हैं। लोक में भी देवता तेतीस ही माने जाते हैं। एकाक्षर कोश-संग्रह के अनुसार इन तेतीस

अक्षरों के तेतीस देवता निम्नलिखित हैं -

1. श्री - (श्-सूर्य, र-अग्नि, ई- माया)-लक्ष्मी
2. रा - (र-अग्नि, आ-विष्णु + ब्रह्मा)-राम, वैभव
3. म - (म्-महाकाल, अ-कैशव) - .....
4. चं - (च्-चन्द्रमा, अम्-नादब्रह्म) - .....
5. द्रं - (द्-दुर्गा, र-अग्नि, अम)-नादब्रह्म
6. गु - (ग्-गणेश, उ-शंकर)-प्राण, मदन
7. नं - (न्-सुगत, अम्-नादब्रह्म)-अनन्त
8. सी - (स्-भारती, ई-माया)-सुखी
9. लं - (ल्-इन्द्र, अम्-नाद ब्रह्म)-पृथ्वी
10. त - (त्-कुबेर, अ-विष्णु)-महाबुद्ध
11. पा - (प्-पवन, आ-ब्रह्मा)-लक्ष्मी
12. ए - (ए-तेजस्, स्कन्द)-वीरभद्र
13. कं - (क्-यम, अम्-नाद ब्रह्म)-शर्व
14. ज - (ज्-मेरू, अ-विष्णु)-मृत्युंजय
15. था - (थ्-कृष्ण,आ-ब्रह्मा)-गंगा,धरित्री
16. व - (व्-वरूण-अ-विष्णु)-वरूणदेवता
17. धू - (ध्-धर्म-ऊ -सूर्य)-आतिधृष्टक
18. आ - (आ-ब्रह्मा)
19. ई - (ई-लक्ष्मी)
20. ऊ - (ऊ -सूर्य)
21. भी - (भ्-शुक्र, ई-लक्ष्मी)-साध्वस
22. झ - (झ्-भैरव, आ-विष्णु)-अर्द्धनारीश्वर
23. षै - (ख्-नभ, ऐ-महेश्वर)-भव(रुद्र)
24. ठा - (ठ्-मनोज, आ-ब्रह्मा)-महेश
25. ढी - (ढ्-काल, ई-लक्ष्मी)-अग्नि
26. घ - (घ्-शक्ति, अ-विष्णु)-भैरव
27. टै - (ट्-पृथ्वी, ऐ-महेश्वर)-प्रेत
28. छा - (छ्-सोम, आ-ब्रह्मा)-सोम

29. डै - (ड्-चंद्र, ऐ-महेश्वर)-वृष(धर्म)
30. ब - (ब्-प्रचेतस्, अ-विष्णु)-प्रचेतस्
31. है - (ह्-गगन, ऐ-महेश्वर)-आह्वान
32. फ - (फ्-झंझा, अ-विष्णु)-वषट्कार
33. या - (य्-ईश्वर, आ-ब्रह्मा)-श्री ।

'एकाक्षर नाम कोष संग्रह' [4] में उपर्युक्त तेतीस अक्षरों के गूढार्थ और भी हैं । लेकिन वे संख्या में इतने अधिक है कि सभी का उल्लेख यहाँ पर नहीं किया जा सकता । तथापि पूर्वोक्त दोहा क्रमांक तेतीस व चौंतीस की सार्थकता तो सिद्ध होती ही है । इन तेतीस अक्षरों के एकाक्षरी-अर्थ के आधार पर 'बत्तीसाक्षरी' (या तेतीसाक्षरी) छन्द के अनेक गूढार्थ प्राप्त किये जा सकते हैं जिनका यहाँ पर उल्लेख अनावश्यक और ग्रन्थ कलेवर बढ़ाने वाला साबित होगा । यहाँ तो इस छन्द की उपयोगिता और प्रासंगिकता प्रमाणित करना ही हमारा लक्ष्य है ।

'पाटी-चरनाइके' और 'चौंतीसाक्षरी' (या तेतीसाक्षरी)-ये दोनों ही ग्रन्थ थोड़े से समयान्तर से-लगभग एक ही कालावधि में (संवत् 1890 विक्रमी या सन् 1833 में) लिपिबद्ध किये गये हैं । दोनों एक ही नगर (दलीपनगर या दतिया) में लिखे गये हैं । 'पाटी-चरनाइके' में 'श्रीरामचंद्र' छन्द को पाटियों से पहले लिखा गया है और 'चौंतीसी' में उक्त छन्द के तेतीस अक्षरों के आधार पर तेतीस दोहे लिपिबद्ध किये गये हैं । ये सभी तथ्य इस धारणा को बल देते हैं कि उस काल में पाटी चरनाइके, लेखे और चौंतीसी-ये सभी 'ग्रन्थ' छात्रों को पढ़ाये जाते थे और इन पर विशेष ध्यान दिया जाता था ।

निष्कर्षत : प्राथामिक शिक्षण की बुन्देली परिपाटी के पाठ्यक्रम में इन सभी का पढ़ाया जाना अनिवार्य था ।

---

1. चौंतीसी की मूल पाण्डुलिपि लेखक के संग्रह में सुरक्षित है ।
2. या नरदेही पाइ कैं, पढ़ अक्षर तेतीस । तामै दो अक्षर भले, सकल जगत के ईस ॥33॥
3. आखिरि जे तेतीस हैं, विदया आद प्रवांन । तातै जे न विसारहैं, प्रेम सही परधाना ॥34॥
4. एकाक्षर नाम कोष संग्रह : परिशिष्ट : शब्दानुक्रम :

चौंत्तीस का मूल पाठ

श्री गनेस जू ॥ श्री सरसुती गुरभे नमः ॥
॥ ग्रथां चौतीसी लिषते ॥

दोहरा

श्रीश्री जो है लछमी ताकौ करै प्रनाम ।।
सुष संपति ग्रपांनदि सदां हू है पूरन कांम ।।1।।

॥ र रा ॥ राम नाम हिरिदै धरौ जौ नर देही पाइ ॥
यातै ग्रौर भलौ नही सदा चरन चितु लाइ ।।2।।

॥ म मा ॥ मदन गुपाल की वरन सकै छब कोइ ॥
जोरी वनी सदांभली स्याम राधका दोइ ।।3।।

॥ च चा ॥ चुगली कबहू न कीजिय़ै नां चुगली की बात ॥
जातै ग्रौर लटी नही वेग थाप उड़ जात ।।4।।

॥ द दा ॥ दगावाज सवतै वुरौ कवहू न कीजै प्रीति ॥
जव देषौ तव है लटी दगावात की रीति ।।5।।

॥ ग गा ॥ गर्भ न कीजै नरन सौं लघुताइी मनिग्रांनि ॥

शब्दार्थ : **आनंदि**-आनन्द, **हूहै**-होगा, **पूरन**-पूर्ण, **भुअमें**-पृथ्वीपर, **हिरिदै**-हृदय में, **छब**-शोभा, **थाप**-प्रतिष्ठा, **गर्भ**-गर्व, **निदानि**-उपाय-समाधान, **नौबद**-नौबत, **यातै**-इससे, **जोरी**-जोड़ी, **वेग**-तुरन्त, **लघुताई**-घोटापन, **विनिमडी**-बिना मढ़ी, **भलौ**-भला, **लटी**-बुरी बात, **सवतै**-सबसे, **मनिआन**-मन में सोचकर, **वाज**-बोल, **तषत**-सिंहासन, **मनमाहि**-मन में, **वांचिअै**-पढ़िये ।

हिलिमिलि कै रहिग्रै सदां जा है भली निदांनि ।।6।।

॥ न ना ॥ नौवद वाजै विनिमडी वाज सुनै नहि कोइ ॥
जैसे येकपुनियौ रहै राज मोह गति होइ ।।7।।

॥ स सा ॥ साहिव की कर वंदगी जामै कछू दिषाइ ॥
कांम क्रोध सव़ छोड़ कै हरिसौ प्रीति लगाइ ।।8।।

॥ लला ॥ लगन लगावौ रांम सौ जातै सुधरै काजु ॥
ऊ पर वौल सदा रहै भुग्रप्रमै भुगते राजु ।।9।।

॥ त ता ॥ तषत मिलै य़ह कर्म तै विनि कर्मै कछु नाहि ॥
जे नर मूरष होत है भूल जात मन माहि ।।10।।

॥ प पा ॥ पलक य़ेक मै है कहा जानति है नहि कोइ ॥
जौ नर हौ विद्वान ना जहाँ तहाँ चुप हौइ ।।11।।

॥ ये यै ॥ येक ग्रौर य़ा हमनिजौ सवै सुनौ दै कांन ॥
हरि कौ ध्यानि धरौ नही ग्रौ फिर नि लगौ पछतांन ।।12।।

॥ क का ॥ कागद हौइ सु वांचिग्रै कर्म न वांचै जाइ ॥
जे ग्रछिरि विधिना विधिना लिषै ते कौ मैटन हारि ।।13।।

॥ ज जा ॥ जगमै जीवन जही है भजौ रांम सौ देव़ ॥
सांची सवसौ वोलिग्रै दिया धर्म कर लेइ ।।14।।

॥ थ था ॥ थर गुन या जग मै करै मानतिहै नहि कोइ ॥
कलजुग कौ ग्रागम वही लटी लगावत सोइ ।।15।।

॥व वा ॥ बालक सौ हाँसी करै ते नर वड़े ग्रजांन ॥
जो कह ग्रावै सो कहै वाकौ कहा प्रवान ।।16।।

॥ ध धा ॥ धन जौ ईस्वर दोइ ग्रह कीजै पुंन विसेष ॥
संग साथ कौ है मरज जनम सुफल कर लेइ ।।17।।

॥ ग्र ग्रा ॥ ग्राषद कीजै जानिकै ग्ररु पुनि बहुत इलाज ॥
वा गत नर जानत नहीं जव घेरौ जमराज ।।18।।

॥ ई ई ॥ ईस्व़र कौ ध्य़ान धर करै सकल जंजाल ॥
मनवाछित फल पाइ है जग के प्रतपाल ।।19।।

॥ उऊ ॥ ऊ जर षेरौ जानि कै जहाँ वसौ जिनिकोइ ॥
जामै स्वाम कछू नही वेग होइ वदगोइ ॥20॥
॥ भ भा ॥ भजन करौ भगवान कौ नित उठ चिति लगाइ ॥
ञ्राषर तू पछताइगौ जातै नही न जाइ ॥21॥
॥ झ झा ॥ झूठ साष न वौलिञ्रै वैठ सवा मै जाइ ॥
सांसी सांसी कहै जामै हर सुष पाइ ॥22॥
॥ ष षा ॥ षईऐ पीजै दीजिञ्रै लीजै हरकौ नाम ॥
नर देही कौ फल जही कीजै ञ्रन सुभकाम ॥23॥
॥ ठ ठा ॥ ठाकुर सौ हाँसी करै नहि हाँसी की बात ॥
स्वाम धर्म कीजै सदां जामै थाप न जाति ॥24॥
॥ ड डा ॥ डूडी डंड के जेर जी कुऊदर पुर ना काज ॥
महांजान वैपार मैं पुनिजामै कछु न लाज ॥25॥
॥ घ घा ॥ घट घट गोविंद वसत है मन मै समझौ ग्यान ॥
जो जांनत ते जांन ही हाहर जही निदांन ॥26॥
॥ ट टा ॥ टहल पाइ सिरकार की धर्म चलावै वेस ॥
मंत्री ञ्रैसौ चाहिजै राष लेइ सव देस ॥27॥
॥ छ छा ॥ छलसौ वैरी मांरिजै कछू न कीजै कांन ॥
जाकौ दोष लगै नहीं वीरी वडौ निदांनि॥28॥
॥ ड डा ॥ डोलत हर चन सै रहै तिनिसौ चित्त लगाइ ॥
यातै ञ्रौर भलौ कहा भजन करौ नित गाइ ॥29॥
॥ व वा ॥ वहैरतौ सवकौ भलौ जो गार्डे गहि लेइ ॥
ऐकै नरनज कै भजै तिन मै हर को देइ॥30॥
॥ ह हा ॥ हाथन कौ फल दान है पांउन तीरथ कीन ॥
कांननि वेद पुरांनि सुनि रांम नाम मुष लीन ॥31॥

शब्दार्थ : **दिया**-दया, **आगम**-आगमन, **अंजान**-अज्ञानी, **पुंन**-पुण्य, **यह**-इस, **पलकयेक**-एकपल, **विधिना**-विधाता, **जही**-यही, **लटी**-बुराई, **प्रवान**-प्रमाण, **मरज**-मर्ज, **विनिकर्मै**-बिना किये, **कहा**-क्या, **देव**-देवता, **कलजुग**-कलियुग, **लगावत**-लगाता, **ग्रह**-घर, **मैटनहार**-मिटाने वाला, **चित्ति**-चित्त, **बौलिऐ**-बोलिये, **जामै**-जिसमें, **दीजिऐ**-दीजिये, **नरदेही**-मानवशरीर, **हाँसी**-मजाक।

॥ फ फा ॥ फूल वांधिऐ सीस पर राजद्वार नहि जाइ ॥
गुड गहर कीजै नही जामै सब सुष पाइ ॥32॥
॥ ज जा ॥ जा नरदेहीपाइ कै पढ ञ्रछर तेतीस ॥
तामै दो ञ्रछर भले सकल जगत के ईस ॥33॥
ञ्रछिरि जे ते तीस है विदया ञ्राद प्रवांन ॥
तातै जे न विसार है प्रैम सही परधान ॥34॥
इति श्री चौतीसी संपूर्न समापता ॥ प्रथम भादौ सुदि 6 संवतु 1890 ॥ मुकाम दलीप नगर ॥ जो वाचै सुनै ताकौ ॥ श्री लाला वाजूराइ की रामराम पहुचै ॥ जैसी प्रत पाई हती जैसी लिषी ॥ भूल चूक माफ है ॥ श्री श्री श्री श्री श्री श्री श्री ॥

शब्दार्थ : **पुनि**-पुनः, **गोविन्द**-भगवान्, **आषर**-अन्त में, **सवा**-सभा, **षईऐ**-खाइये, **लीजै**-लीजिये, **जही**-यही, **स्वाम**-स्वामी, **लाज**-शर्म, **वसत**-वास करता, **जातै**-जिससें, **सांसी**-सत्य, **पीजै**-पीजिये, **हर**-हरि, **थाप**-प्रतिष्ठा, **वैपार**-व्यापार, **ग्यान**-ज्ञान, **मुष**-मुख, **ईस**-ईश, **आछिरि**-अक्षर, **आद**-आदि, **प्रवांन**-प्रमाण, **तातै**-इस कारण, **जे**-ये, **प्रथम भादौं**-अधिक भाद्रपद मास का प्रथम शुक्ल पक्ष, **वाचै**-पढे ताकौं-उसे, **प्रत**-प्रति, **हती**-थी, **लिषी**-लिखी, **माफ**-क्षमा ।

चरनाइके - प्रासंगिकता व उपयोग

वर्तमान-समय में 'नैतिक-शिक्षा' नाम भर के लिए रह गई है। शिक्षा-विभाग द्वारा जारी किये जाने वाले 'परीक्षा-फल पत्रकों' में 'नैतिक-शिक्षा' का एक 'कॉलम' तो रहता है किन्तु उसमें प्राप्तांक प्राय: 'फर्ज़ी' भरे जाते हैं। कारण है, जब 'पाठ्यक्रम' में ही 'नैतिक-शिक्षा' का कोई पाठ न होगा तो परीक्षाफल पत्रक में नम्बर फर्जी भरे ही जायेंगे।

इसका परिणाम सामने है। विद्यार्थी ज्यों-ज्यों छोटी से बड़ी कक्षाओं में प्रविष्ट होता चला जाता है, वह अनुशासनहीन, उद्दण्ड, उच्छृंखल और अशिष्ट होता चला जाता है। अत: ऐसी परिस्थिति में यदि छात्रों को नैतिक-शिक्षा के पाठ पढ़ना अनिवार्य कर दिये जायें तो कम से कम आने वाली नयी पीढ़ी तो इतनी 'अशिष्ट' न होगी कि आगे-चलकर 'समाज' के लिए 'भार स्वरूप' बन जाये।

अस्तु यह कार्य 'चरनाइकों' द्वारा भली प्रकार सम्पन्न किया जा सकता है। 'चरनाइके' लगभग चारों पुरूषार्थों (अर्थ धर्म काम और मोक्ष) की शिक्षा देने में समर्थ हैं। इनका सही उपयोग हमारी नयी पीढ़ी के लिए लाभदायक सिद्ध हो सकता है।

तेरा लेखे

पूर्वकाल में, गणना और दैनिक अंक गणित में निपुणता उत्पन्न करने के उद्देश्य से लेखे पढ़ाये जाते थे। ये संख्या में तेरह होते थे जिन्हें बुन्देली में 'तेरा-लेखे' कहा जाता था। ये लेखे निम्नलिखित नामों से जाने जाते थे :-

1. गिनती (गणना) एक से लेकर सौ तक।
2. पहाड़े- 2 से लेकर 40 तक।
3. पउआ-एक चौथाई या $^{1/4}$ का पहाड़ा।
4. अदधा-आधे या $^{1/2}$ का पहाड़ा।
5. पौना-तीन चौथाई या $^{3/4}$ का पहाड़ा।
6. सवइया- $^{5/4}$ का पहाड़ा।
7. ड्योढ़ा- $^{3/2}$ का पहाड़ा।
8. ढइया- $2^{1/2}$ या ढाई का पहाड़ा।
9. हूँठा- $3^{1/2}$ या साढ़े तीन का पहाड़ा।
10. ढौंचा- $4^{1/2}$ या साढ़े चार का पहाड़ा।
11. पौंचा- $5^{1/2}$ या साढ़े पाँच का पहाड़ा।
12. कौंचा- $6^{1/2}$ या साढ़े छै का पहाड़ा।
13. बड़ा इकन्ना- IXI या संख्या के वर्ग का पहाड़ा।

लेखा क्रमांक 12 (कौंचा) की केवल चर्चा सुनने में आयी है। दतिया के सुप्रसिद्ध मानस प्रवचन कर्त्ता डॉ. मानस विश्वास के पूज्य पिता स्व. पं. रामचरण गोस्वामी के कथनानुसार 'कौंचा' नामक लेखा बहुत पूर्वकाल में पढ़ाया जाता था। कालान्तर में वह प्रचलन से हट गया और उसके स्थान पर 'विकट पहाड़ा' पढ़ाया जाने लगा था।

'लेखों' की अंक-लिपि

'तेरह लेखे' और दैनिक हिसाब-किताब को सुरक्षित रखने के लिए जिस 'अंक लिपि' का प्रयोग किया जाता था, वह एक प्रकार से सम्पूर्ण उत्तरीभारत की राष्ट्रीयअंक लिपि थी, जिसका कमोवेश रूप में आज भी प्रयोग किया जाता है।

इस अंक-लिपि में $^{1}/_{4}$ के लिए एक खड़ी पाई (।), $^{1}/_{2}$ के लिए दो खड़ी पाई (॥) और $^{3}/_{4}$ के लिए तीन खड़ी पाइयों (।।।) का उपयोग होता था। अर्थात्:-

1. पउआ- ।
2. अद्धा- ॥
3. पौना- ।।।

'पौना' के बाद पूरी संख्या आती थी। तत्पश्चात् उस संख्या के आगे (दाहिनी ओर) एक पाई लगाने से संख्या का सवाया (१।) दो पाई लगाने से संख्या का डेवढ़ा(१॥) और तीन पाई लगाने से अगली संख्या का पौना-(१।।। पौने दो, २।।। पौने तीन, 3।।। पौने चार-इत्यादि) हो जाते थे। गिनती की सारी संख्याओं में सही क्रम चलता था। शुरू की १ व २ संख्याओं की तो पढन्त क्रमश: १। (सवा) १॥ (डेढ़) १।।। (पौने दो) और २॥ (ढाई) थी लेकिन तीन (३) के बाद एक पाई लगाने पर सवातीन (३।), दो पाई लगाने पर साढ़े तीन (३॥) कहा जाता था। अर्थात् ढाई के बाद दो पाई लगाने पर संख्या को साढ़े तीन (३॥) साढ़े चार (४॥) इत्यादि कहा जाता था।

तेरह लेखों की सीमा व कलेवर

'तेरह लेखों' की सीमा व कलेवर पूर्व-निर्धारित व परम्परागत है। यह निर्धारण किसके द्वारा किया गया है -यह बता सकना कठिन है।

पैलौ लेखौ-गिनती

प्रथम लेखौ 'गिनती' या गणना है। इसके दो भाग है। प्रथम भाग एक से प्रारंभ होकर सौ पर समाप्त होता है।

द्वितीय भाग 'इकाई' से प्रारंभ होकर 'दश शंख' तक जाता है। द्वितीय भाग एक प्रकार से किसी संख्या में आने वाले अंकों का 'स्थानीय-मान' बतलाता है।

एक से सौ तक की गिनती दैनिक-सामान्य गणित में काम आती है। यह गिनती सौ से आगे भी जाती है, लेकिन पढ़ाई केवल सौ तक जाती है। गिनती 'सौ' तक ही क्यों है, इसका कारण यह है कि इस समग्र सृष्टि के कर्त्ता-धर्त्ता 'ब्रह्मा' की कुल आयु उनके निजी-मान से 'सौ वर्ष' मानी गई है। अत: सारी संख्याओं का 'तालमेल' बिठाने के लिए 'सौ' का निर्धारण किया गया है।

भारतीय मान्यता के अनुसार ब्रह्मा की सम्पूर्ण आयु 'पर' कहलाती है। इसके आधे भाग को 'परार्द्ध' कहते हैं। ब्रह्मा की आयु का एकदिन 'कल्प' कहलाता है। रात भी एक ही कल्प की मानी गई है। अत: ब्रह्मा का एक अहोरात्र (एक दिन रात) दो कल्प के बराबर होता है।

एक कल्प के हजारवें भाग को एक 'महायुग' (या एक चतुर्युग) कहते हैं। अत: ब्रह्मा के एक अहोरात्र का 'मान' दो हजार महायुग के तुल्य होता है। दूसरे शब्दों में 'पर' का छत्तीस हजारवाँ भाग ब्रह्मा का एक दिन रात होता है। यह दो हजार 'महायुगों' के बाराबर है।

एक महायुग के चार भाग है जो क्रमश: कृतयुग, त्रेतायुग, द्वापर युग और कलियुग कहलाते हैं। इन चारों युगों का आनुपातिक मान क्रमश: 4800 : 3600 : 2400 : 1200 दिव्य वर्ष (या प्रकाशवर्ष) है। दिव्यवर्ष को मानववर्ष में बदलने के लिए 360 का गुणा करना पड़ता है। गुणा करने पर जो संख्या प्राप्त होती है वह तेतालीस लाख बीस हजार (43,20,000) मानव वर्ष है। यह एक महायुग का मान है। इसका हजार गुना (43,20,000,000 मानव वर्ष) एक कल्प का मान और इसका भी दो गुना (86,40,000,000 मानव वर्ष) ब्रह्मा के एक अहोरात्र का मान हुआ। इसमें 360 का गुणा करने पर ब्रह्मा के एक वर्ष का मान (31104,000,00000) और 100 का गुणा करने पर ब्रह्मा के 100 वर्ष (पर) का मान निकलता है। अर्थात् (31104 0000000000 मानव वर्ष)। 'पर' के इस मान में 360 का गुणा करने पर 111974400000000000 मानव दिन निकलते हैं। अर्थात् ब्रह्मा की सम्पूर्ण आयु 11197 4400000000000 मानव दिनों के तुल्य है। यह संख्या अठारह अंकों की है। शायद यही कारण है जो भारतीय गणितज्ञों ने सबसे बड़ी संख्या अठारह अंकों की निर्धारित की है। इस संख्या 'पर' के स्थानीय मानों के नाम इस प्रकार हैं - इकाई, दहाई, सैकड़ा, हजार, दस हजार, लाख, दस लाख, करोड़, दस करोड़, अरब, दस अरब, खरब, दस खरब, नील, दस नील, पदम, दस पदम, शंख, दस शंख।

ये 19 नाम बुन्देली (या हिन्दी) के हैं। प्राचीन संस्कृत संज्ञाएँ निम्नानुसार केवल अठारह है - एक, दशा, शत, सहस्त्र, अयुत, लक्ष, प्रयुत, कोटि, अर्वुद, अब्ज, खर्ब, निखर्ब, महापद्म, दम शंकु, जलधि, अंतिज, मध्य और परार्द्ध।

दूसरौ लेखौ-पहाड़े

किसी संख्या में एक से लेकर दस तक गुणा करने पर जो दस संख्याएँ प्राप्त होती हैं, वे उस संख्या का 'पहाड़ौ' कहलाती है। ये संख्याएँ, किसी संख्या में उसी संख्या को लगातार दस तक जोड़ते जाने से भी उपलब्ध होती हैं। सामान्य उपयोग के लिए कुल पहाड़े 2 से लेकर 40 तक पढ़ाये जाते थे। शेष संख्याओं के भी पहाड़े हो सकते हैं। लेकिन संभवत:

उन्हें अनिवार्य नहीं समझा गया।

तीसरौ लेखौ 'पउआ' (।)

किसी वस्तु (या संख्या) के चौथाई भाग ($^{1}/_{4}$) को 'पउआ' कहते हैं। अंक लिपि में इसका चिह्न एक खड़ी पाई (।) है। 'पउआ' एक से सौ तक पढ़ाया जाता था। संस्कृत में 'पउआ' को 'पाद' कहा जाता है। किसी संख्या की इकाई से पूर्व एक पाई लगा देने पर उस संख्या का 'सवा' पढ़ा जाता है। जैसे - १। (सवा) २। (सवा दो)३। (सवा तीन) इत्यादि।

चौथौ लेखौ 'अद्धा' (॥)

किसी संख्या का आधा भाग ($^{1}/_{2}$) 'अद्धा' (या अर्द्धक) कहलाता है। इस का चिन्ह दो खड़ी पाइयाँ (॥) है। इसकी सीमा एक से लेकर सौ तक है। किसी संख्या की इकाई से पूर्व दो पाइयाँ लगा देने पर वह संख्या ड्योढ़ी पढ़ी जाती है। यथा १॥ (डेढ़) २॥ (ढाई) ३॥ (साढ़े तीन)।

पाँचऔं लेखौ 'पौना' (।॥)

किसी संख्या की 'पादऊन' (या $^{3}/_{4}$) भाग 'पौना' कहलाता है। इसे तीन खड़ी पाइयों द्वारा (।॥) प्रदर्शित करते हैं। केवल तीन खड़ी पाइयों को 'पौन' कहा जाता है लेकिन यदि ये तीन खड़ी पाइयाँ किसी संख्या की 'इकाई' के पूर्व लगी हो तो उस संख्या से अंगली संख्या का पौन पढ़ा जायेगा। यथा-१।॥ (पौने दो) २ ।॥ (पौने तीन) ३।॥ (पौने चार) इत्यादि 'पौना' भी सौ तक पढ़ाया जाता है।

छठऔं लेखौ-'सवइया' (१।)

पूरी एक संख्या और उस संख्या का चतुर्थांश मिलकर 'एक सवइया' बनता है। इसे संख्या की इकाई से पूर्व एक खड़ी पाई लिखकर प्रदर्शित करते हैं। संस्कृत में इसे 'सपाद+संख्या' कहते हैं। यथा-सपादत्रय (सवातीन) ३।, या १। (सवा) २। (सवा दो) ३। (सवातीन) इत्यादि। सवइया की सीमा सौ तक है।

सातऔं लेखौ-'ड्योढ़ा' (१॥)

एक पूर्ण संख्या और उसका आधा भाग मिलकर 'डेढ़' (ड्योढ़ा) कहलाता है। भिन्न

में इसे- $1^{1/2}$ और अंक लिपि में एक पूरी संख्या और एक 'अद्धा' के चिह्न (दो खड़ी पाई लगा कर) प्रदर्शित करते हैं। ड्योढ़े की पहली संख्या 'डेढ़' और दूसरी 'ढाई' कहलाती है। लेकिन इसकी पश्चाद्वर्ती संख्याओं को 'साढ़े' लगाकर पढ़ते है। जैसे-३॥ (साढ़े तीन) ४॥ (साढ़े चार) इत्यादि। इसे 'सार्द्ध' या सार्द्धक भी कहते हैं। यह भी सौ तक पढ़ाया जाता है।

आठऔं लेखौ-'ढइया' (२॥)

किसी संख्या का 'ढाईगुना' किसी संख्या का दुगुना और (आधा भाग) 'ढइया'कहलाता है। इसे संख्या की ईकाई से पहले दो खड़ी पाइयाँ लगाकर प्रदर्शित करते हैं। लेकिन 'ढइया' की पहली संख्या दो पाई लगाकर और उसके बाद की संख्या पूर्णरूप में लिखी जाती है। जैसे-२॥ (ढाई) ५ (पाँच) ७॥ (साढ़े सात) १० (दस) इत्यादि ढइया का पहाड़ा भी 'सौ' तक चलता है तथा किसी संख्या का ढाई गुना बताने के लिए 'ढाम' शब्द का प्रयोग करते हैं। जैसे-तीन ढाम साढ़े सात (७॥) यह रूढ़ संख्या-५ को ऋाधे भाग का पहाड़ा है।

नोमौं लेखौ-'हूँठा' (३॥)

किसी संख्या के तिगुने और आधे भाग को 'हूँठ' कहते हैं। इसे संख्या से पहले दो खड़ी पाई लगा का प्रदर्शित करते है। इसे भी सौ तक पढ़ा जाता है। 'हूँठा' में भी 'ढइया' की तरह पहली संख्या सार्द्धक और अगली संख्या 'पूर्ण' होती है। यथा ३॥ (हूँठ) ७ (सात) १०॥ (साढ़े दस) और १४ (चउदा) इत्यादि। किसी संख्या का 'हूँठ' पढ़ने के लिए ऐसा कहना पड़ता है- दो हूँठ (७) तीन हूँठ (१०॥) चार हूँठ (१४) इत्यादि। वस्तुत: यह रूढ़ संख्या ७ के आधे भाग का पहाड़ा है।

दसऔं लेखौ-'ढौंचा' (४॥)

किसी संख्या के चौगुने और आधे भाग को 'ढौंचा' कहते हैं। इसे संख्या की इकाई से पूर्व दो खड़ी पाइयाँ (॥) लगा कर दिखलाते हैं। किन्तु ढौंचा के पहाड़े में भी पहली संख्या सार्द्धक और दूसरी पूर्ण होती है। वस्तुत: यह भी रूढ़ संख्या ९ के आधे भाग का पहाड़ा है। इसे भी सौ तक पढ़ा जाता है।

ग्यारऔं लेखौ-'पौंचा' (५॥)

'पौंचा', रूढ़ संख्या ११ के आधे भाग का पहाड़ा है जो एक से लेकर सौ तक पढ़ा

जाता है। संस्कृत में इसे 'पौंण्ड्क' कहते है। इसकी भी यही विशेषता है कि पहली संख्या सार्द्धक (यथा-५॥) और दूसरी संख्या पूर्ण होती है। सामान्य रूप में इसे किसी संख्या के पाँच गुने ओर अर्द्धक से मिलने वाली संख्या का पहाड़ा समझना चाहिए।

बारऔं लेखौ-'कौंचा' (६॥)

साढ़े छै, या रूढ़ संख्या १३ के आधे भाग को 'कौंचा' कहते है। इसमें भी पहली संख्या 'सार्द्धक' और दूसरी 'पूर्ण' रहती है। 'कौंचा' का पहाड़ा भी एक से लेकर सौ तक चलता है।

नोट: ओढ़ा, ढइया, हूँठा, ढौचा, पौंचा, और कौंचा-इन छहाँ संख्याकों का स्वरूप 'सार्द्धक' है तथा सार्द्धक से दूसरी संख्या सदैव पूर्ण रहती है।

तेरऔं लेखौ-'बड़ौं इकन्ना' (१X१)

'बड़ौ इकन्ना' एक प्रकार से 'किसी संख्या में उसी संख्या के गुणा करने की क्रिया का पहाड़ा है। दूसरे शब्दों में इस संख्या के वर्ग का पहाड़ा समझना चाहिए। यह भी एक से लेकर सौ तक चलता है।'

चउदमौ लेखौ-'विकट पहाड़ौ'

'विकट पहाड़ौ' रूढ़ संख्या ११ में क्रमश: ११-१२-१३ से लेकर २० तक की संख्याओं का गुणा करने पर बनता है। इसके बाद ११X१२ के गुणन फल में क्रमश: १२ जोड़ते जाने से १२ का और ११X१३ के गुणनफल में १३ जोड़ते जाने से १३ का 'विकट पहाड़ा' बनता है। तात्पर्य यह कि विकट पहाड़ा क्रमश: ११-१२-१३-१४-१५-१६-१७-१८-१९ और २० के गुणनफल में इन्हीं संख्याओं को जोड़ते चले जाने से बनता है। इसे 'ग्यारिया' भी कहते हैं।

विकट पहाड़े का एक अन्य भेद भी है जो 'व्यापार गणित' में प्रयुक्त होता है। इस भेद में ड्योढा, ढाम, हूँठा, ढौंचा, ओर पौंचा इन लेखों का क्रमश: इन्हीं लेखों से किया हुआ गुणन-फल रहता है। यथा-ड्योढे का ड्योढ अर्थात् ड्योढ की डेढ़ गुनी संख्या। ढाम की डेढ़ गुनी संख्या। इस क्रम से ड्योढ, ढाम, हूँठा ढौंचा और पौंचा-इन सभी की डेढ़ गुनी, ढाई गुनी, साढ़े तीन गुनी, साढ़े चार गुनी और साढ़े पाँच गुनी संख्याएँ रहती हैं।

तेरह लेखौं की प्रासंगिकता व उपयोग

'कैलकुलेटर' तथा 'कम्प्यूटर' के आविष्कार एवं विकास ने गणित के तेरहौं लेखौं को प्रचलन से हटा दिया है। इन्हें प्रचलन से हटाने में आधुनिक शिक्षा शास्त्रियों के 'परामर्श' की भी अहम् भूमिका रही है। एक दृष्टि से तो यह अच्छा हुआ है। क्योंकि इन तेरहों लेखौं का कण्ठस्थ करने में बहुत श्रम और समय लगता था। लेकिन, क्या कैलकुलेटर और कम्प्यूटर हर आम आदमी को 'सुलभ' हैं ? क्या इन्हें हर समय साथ में रखा जा सकता है ? क्या हर आदमी इन्हें हर जगह प्राप्त कर सकता है ? क्या कैलकुलेटर द्वारा गणना करने में भूल नहीं हो सकती ? क्या 'कम्प्यूटर' में 'गलत-फीडिंग' नहीं हो सकती। या गलती अथवा असावधानी के कारण 'कम्प्यूटर' गलत परिणाम नहीं दे सकता? -ऐसे और भी अनेक प्रश्न है जिनका सन्तोषजनक उत्तर नहीं मिलता ऐसी स्थिति में 'तेरह लेखे' कहीं ज्यादा उपयोगी और 'कम समय खाने वाले' प्रमाणित हो सकते है। दूसरी बात, नयी-पीढ़ी में जो 'स्मृतिलोप' के लक्षण प्रकट हो रहे हैं। यह दोष भी 'तेरह लेखों' के पुन: प्रचार से दूर हो सकता है।

भारत जैसे विशाल और बहु जनसंख्या वाले देश में, आर्थिक और साधन-सम्पन्नता का प्रतिशत इतना कम है कि हर आदमी, हर छात्र इन दोनों 'उपकरणों' का उपयोग नहीं कर सकता। ऐसी दशा में एकमात्र लेखे ही ऐसा साधन है जो सभी के लिए लाभदायक और उपयोगी साबित हो सकते हैं। लेखक का दीर्घकालीन शिक्षण अनुभव भी यही कहता है कि 'लेखों' की पढ़ाई से नूतन छात्रों का बौद्धिक-विकास करने में काफी मदद मिलती है। इन्हें दुबारा पाठ्यक्रम में रखा जाना चाहिए।

फिर एक बात और भी है जो अत्यन्त महत्वपूर्ण है। प्राचीन ग्रन्थों में जिस गणित का उपयोग किया गया है, वह 'लेखों' की शिक्षा के अभाव में 'नये शोधकर्त्ता' अथवा किसी जिज्ञासु के लिए एक 'समस्या' बन जाता है।

इन लेखौं पर पूर्ण अभ्यास और अधिकार हो जाने से कठिन से कठिन प्रश्न 'चुटकियों' में हल हो जाते हैं। यह आज भी अनुभव सिद्ध है।

अत: इन तेरहों लेखों का मनोवैज्ञानिक दृष्टि से 'परीक्षण' किया जाना चाहिए। और यदि ये उपयोगी सिद्ध होते हैं तो इनका फिर से प्रचलन किया जाना चाहिए।

तेरह लेखौं की 'परमाच'

'तेरहों लेखे' गणित की आधार भूमि है। इन्हें भली प्रकार सीखकर इनका सावधानी के साथ 'अभ्यास' करने पर ही, इन पर 'पूर्ण-अधिकार' हो सकता है। पूर्ण-अधिकार के अभाव में, ये लेखे हमारे लिए अधिक उपयोगी साबित नहीं हो सकते। इसलिए इनकी 'परमाच' आवश्यक है।

'लेखों' की परमाच 'सस्वर' (अर्थात् पूर्ण उच्चारण के साथ) होनी चाहिए। 'सस्वर परमाच' करने से यह लाभ होता है कि 'स्मृति' और 'प्रयत्न' दोनों में तालमेल हो जाता है। परिणामत: जब किसी लेखे के उपयोग की आवश्यकता पड़ती है तो सोचना नहीं पड़ता। मुँह से तत्काल निकल पड़ता है कि दो एकम दो के बाद दो दूनी चार आते हैं या पाँच।

यह 'परमाच'प्रतिदिन कम से कम दस बार अवश्य करानी चाहिए। इसके लिए जरूरी नहीं है कि प्रतिदिन तेरहों लेखों की 'परमाच' करा दी जाये। प्रतिदिन एक लेखे के हिसाब से भी यदि परमाच करायी जाये तो भी एकवर्ष में तेरहों लेखो पर पूर्ण-अधिकार हो सकता है।

परमाच के साथ-साथ इन्हें लिखने का भी पर्याप्त अभ्यास कराना चाहिए। साथ ही इनमें से प्रत्येक लेखे का उपयोग भी सिखाना चाहिए।

गिनती की परमाच

इकन्ना एऽक।
दूना दोऽ।
तिरका तीऽन ।
चौकौ चाऽर ।
पंचै पाँऽच ।
छ्याम छैऽ।
सत्तें साऽत।
अट्ठें आऽठ।
न्याम नौऽ।
दसारम दसऽ।

एक पै एक ग्यारा।
एक पै दो बारा।

एक पै तीन तेरा।
एक पै चार चउदा।
एक पै पाँच पंद्रा।
एक पै छै सोला।
एक पै सात सत्तरा।
एक पै आठ अठरा।
एक पै नौ उनइस।
दो की बिन्दी बीस।

बीस के पश्चात् की परमाच इसी क्रमसे अर्थात् दो पै एक इकईस, तीन पै एक इकतीस, तथा दहाई आने पर तीन की (पै) बिन्दी तीस, चार की (पै) बिन्दी चालीस- इस प्रकार की जाती थी। सौ की गिनती पूरी होने पर उससे अधिक की परमाच इस प्रकार होती थी।

दस पै एक-इकोतर सौ।
दस पै दो- दिमंकर सौ।
दस पै तीन- तिरोतर सौ।
दस पै चार- चलोतर सौ।
दस पै पाँच-पचोतर सौ।
दस पै छै-सटोतर सौ।
दस पै सात- सतोतर सौ।
दस पै आठ- अठोतर सौ।
दस पै नौ- नवोतर सौ।
दस पै दस - दहोतर सौ।

तत्पश्चात् दस पै ग्यारा- ग्यारोतर सौ, बारोतर सौ, तेरोतर सौ, चउदोकर सौ, पंद्रोल सौ, सोलोतर सौ, अठारोतर सौ, उनइसा सौ, बीसासौ, इकइसा सौ, इत्यादि गिनती चलती थी।

पहाड़ेन की परमाच

दो एकम दोऽ।
दो दूनी चारऽर।

दो तिया छैऽ ।
दो चौकौ आऽठ ।
दो पंचैं दऽस ।
दो छंग बाऽरा ।
दो सत्ते चउदा ।
दो अट्ठें सोरा ।
दो न्याम अठारा ।
दोह दसारम बीस ।

पउआ (पौआ) की परमाच

'एक' या किसी संख्या के चतुर्थांश 1/4 को 'पउआ' कहते हैं । पउआ के पहाड़े की परमाच निम्नलिखित है ।

पउआ - पउआ ।
दो पउआ - अद्धा ।
तीन पउआ - पौन ।
चार पउआ - एक ।
पाँच पउआ - सवा ।
छै पउआ - डेढ़ ।
सात पउआ - पौने दो ।
आठ पउआ - दो ।
नौ पउआ - सवा दो ।
दस पउआ - ढाई ।
ग्यारा पउआ - पौने तीन
वारा पउआ - पूरे तीन
तेरा पउआ - सवा तीन
चउदा पउआ - साढ़े तीन
पंद्रा पउआ - पौने चार
सोरा पउआ - पूरे चार
सत्तरा पउआ - सवाचार

अठारा पउआ - साढ़ेचार
उनईस पउआ - पौने पाँच
बीस पउआ - पूरे पाँच

इसके बाद एक पउआ अधिक होने पर 'सवा', दो अधिक होने पर 'साढ़े', तीन अधिक होने पर 'पौने' और चार अधिक होने पर 'पूरे' लगाकर अगली संख्या का उच्चारण किया जाता था । यथा-

सवा पाँच, साढ़े पाँच, पौने छै, पूरे छे, सवा छै, साढ़े छै, पौने सात, पूरे आठ, सवा आठ, साढ़े आठ, पौने नौ, पूरे नौ, सवा नौ, साढ़े नौ, पौने दस, पूरे दस ।

अद्धा की परमाच

अद्धा - अद्धा ।
दो अद्धा - एक ।
तीन अद्धा - डेढ़ ।
चार अद्धा - पूरे दो ।
पाँच अद्धा - ढाई ।
छै अद्धा - पूरे तीन ।
सात अद्धा - साढ़े तीन ।
आठ अद्धा - पूरे चार ।
नौ अद्धा - साढ़े चार ।
दस अद्धा - पूरे पाँच ।

दस अद्धा के बाद क्रमश: साढ़े और पूरे का प्रयोग करते हुए पहाड़े को आगे बढ़ाया जाता था ।

पौना की परमाच

तीन चौथाई, 3/4 या तीन चतुर्थांश वाले पहाड़े को 'पौन या पौना' कहा जाता है । इसके पहाड़े की परमाच इस प्रकार की जाती थी ।

पौनें - पौन
दो पौनें - डेढ़

तीन पौनें - सवा दो
चार पौनें - तीन
पाँच पौनें - पौनें चार
छै पौनें - साढ़े चार
सात पौनें - सवा पाँच
आठ पौनें - छै
नौ पौने - पौने सात
दस पौनियाँ - साढ़े सात

इस पहाड़े में प्रथम किसी संख्या का पौना फिर उसका ड्योढा, फिर उससे अगली संख्या का सवाया फिर अन्त में उससे अगली पूरी संख्या आती है। यथा-

(1) ।।। - १।। -२ । - ३
पौन- डेढ़- सवादो-तीन ।।
३ ।।। - ४।। - ५। - ६
पौने चार-साढ़े चार-सवा पाँच-छै ।।

सबाइया की परमाच

किसी पूर्ण संख्या के साथ एक चौथाई 1/4 (एक चतुर्थाश) जुड़े होने पर संख्या को 'सवा+ संख्या' (जैसे-सवा दो, सवा तीन कहकर पुकारते हैं। इसके पहाड़े की परमाच निम्नलिखित है-

सवा - सवाम ।
दो सवाम - ढाई ।
तीन सवाम - पौने चार ।
चार सवाम - पाँच ।
पाँच सवाम - सवा छै ।
छै सवाम - साड़े सात ।
सात सवाम - पौने नौ ।
आठ सवाम - दस ।
नौ सवाम - सवा ग्यारा ।
दस सवाम - साड़े बारा ।।

इसके बाद ग्यारा-सवाम से लेकर सौ सवाम एक सौ पच्चीस तक की परमाच करानी चाहिए।

ड्योढ़ा की परमाच

ड्योड़े - ड्योढ़ ।
दो ड्योड़ें - तीन ।
तीन ड्योड़ें - साढ़े चार ।
चार ड्योड़ें - छै ।
पाँच ड्योड़ें - साड़े सात ।
छै ड्योड़ें - नौ ।
सात ड्योड़ें - साड़े दस ।
आठ ड्योड़ें - बारा ।
नौ ड्योड़ें - साड़े तेरा ।
दस ड्योड़ियाँ - पन्द्रा ।

ढइया की परमाच

ढाम - ढाम ।
दो ढाम - पाँच ।
तीन ढाम - साड़े सात ।
चार ढाम - दस ।
पाँच ढाम - साड़े बारा ।
छै ढाम - पन्द्रा ।
सात ढाम - साड़े सत्रा ।
आठ ढाम - बीस ।
नौ ढाम - साड़े बाइस ।
दस ढाम के पच्चीस ।

हूँठा की परमाच

हूँठें - हूँठ ।
दो हूँठे - सात ।
तीन हूँठे - साड़े दस ।

चार हूँठे - चउदा ।
पॉच हूँठें - साड़े सत्रा ।
छै हूँठें - इकईस ।
सात हूँठें - साड़े चौबीस ।
आठ हूँठें - अट्ठाईस ।
नौ हूँठें - साड़े इकतीस ।
दस हूँठिया - पैंतीस ।

ढौंचा की परमाच

ढौंचे - ढौंच ।
दो ढौंचें - नौ ।
तीन ढौंचे - साड़े तेरा ।
चार ढौंचे - अठारा ।
पाँच ढौंचे - साड़े बाईस ।
छै ढौंच के सत्ताईस ।
सात ढौंच के साड़े इकतीस ।
आठ ढौंच के छत्तीस ।
नौ ढौंचियाँ साड़े चालीस ।
दस ढौंचियाँ पेंतालीस ।

इसके बाद ग्यारा से लेकर सौं ढौंच तक परमाच करानी चाहिए ।

पौंचा की परमाच

पौंचे - पौंच । (५॥)
दो पौंचे - ग्यारा ।
तीन पौंचे - साड़े सोरा ।
चार पौंचे - बाईस ।
पाँच पौंचे - साड़े सत्ताईस ।
छै पौंच के तेतीस ।
सात पौंचे - साड़े अड़तीस ।

आठ पौंच - चवालीस ।
नौ पौंच के साड़े उनंचास ।
दस पौंचियाँ - पचपन ।

इसके उपरान्त ग्यारा पौंच से लेकर सौ पौंच तक परमाच करायी जाये ।

कौंचा की परमाच

कौंचे - कौंच (६॥)
दो कौंचे - तेरा ।
तीन कौंचे - साड़े उनईस ।
चार कौंचे - छब्बीस ।
पाँच कौंचे - साड़े बत्तीस ।
छै कौंचियाँ - अड़तीस ।
सात कौंचें - साड़े पेंतालीस ।
आठ कौंचे - बावन ।
नौ कौंचे - साड़े अन्ठावन ।
दस कौंचियाँ - पैंसठ ।

कौंचा को भी ग्यारा से लेकर सौ तक पढ़ाया जाता था ।

बड़ौ-इकन्ना की परमाच

एक-एकम-एक ।
दो-दूनी-चार ।
तीन-तिरका-नौ ।
चार-चौकौ-सोरा ।
पचम-पच्चीस ।
छै छ्याम-छत्तीस ।
सात-सतें-उनंचास ।
आठ-अट्ठें-चौंसठ ।
नौ-न्याम-इक्यासी ।

दस-दसाम-सौ ।
ग्यारम-ग्यार-इकइसा सौ ।
बारम-बार-चबाल सौ ।
तेरम-तेर-उनत्तर सौ ।
चौदम-चौद-छयानवै सौ ।
पन्द्रम-पंद्रा दो सै पच्चीस ।
सोरम-सोरा-दो से छप्पन ।
सत्रम-सत्रा-दो सै नबासी ।
अठारम-अठार-तीन सै चौबीस ।
उनईसम-उनईस-तीन सै इकसठ ।
बीसम-बीसा-चार सौ ।

तदुपरान्त-इकईसम-इकईस, बाईसम-बाईस, तेईसम-तेईस कहते हुए सौ तक परमाच करानी चाहिए ।

विकट-पहाड़ौ (बड़ौ ग्यारिया)की परमाच

विकट पहाड़े की परमाच में सर्वप्रथम ग्यारा का फिर क्रमानुसार 12/13/14/15/16 /17/18/19 और बीस का पहाड़ा-ग्यारम-बारम-तेरम-चउदम-पन्द्रम-सोरम-सत्रम-अठारम-उनईसम और बीसम कहते हुए निम्न प्रकार से अभ्यास कराना चाहिए -

ग्यारा-ग्यारम-इकईसा सौ ।
ग्यारा-वारम-बत्तीसा सौ ।
ग्यारा-तेरम-तेतालीस सौ ।
ग्यारा-चउदम-चउअना सौ ।
ग्यारा-पन्द्रम-पेंसठा सौ ।
ग्यारा-सोरम-छियन्तर सौ ।
ग्यारा-सत्रम-सतासी सौ ।
ग्यारा-अठारम-अन्ठानवै सौ ।
ग्यारा-उनईसम-दो से नौ ।
ग्यारा-बीसम-दो से बीस ।

विकट पहाड़े के दूसरे भेद की परमाच

		(1)	(2)	(3)	(4)	(5)
(1)	ड्योढ़ का	ड्योढ़	ढाम	हूँठ	ढौंच	पौंच
(2)	ढाम का	ड्योढ़	ढाम	हूँठ	ढौंच	पौंच
(3)	हूँठ का	ड्योढ़	ढाम	हूँठ	ढौंच	पौंच
(4)	ढौंच का	ड्योढ़	ढाम	हूँठ	ढौंच	पौंच
(5)	पौंच का	ड्योढ़	ढाम	हूँठ	ढौंच	पौंच

तेरह-लेखों की सारिणी

यह सारिणी विक्रम संवत् 1803 में लिपिबद्ध (हस्तलिखित) सारिणी सन् 1746 ई. के आधार पर तैयार की गई है । जिन पाठकों की वर्तमान आयु पचास से ऊपर है, संभवत: उन्हें इसका स्मरण होगा । लेकिन इससे कम आयु वाले बहुत ही थोड़े व्यक्ति ऐसे होंगे जिन्हें यह पढ़ाई गई होगी । कारण कि तीस-चालीस वर्ष पूर्व यह सारिणी प्रचलन से हटा दी गई थी ।

पूर्व में दी हुई 'परमाच' के आधार पर इस सारिणी का समुचित अभ्यास कर लेने पर एक सामान्य विद्यार्थी भी 'जीवन्त गणक' बन सकता है ।

इस सारिणी में जो बुन्देली संख्याओं के स्थानीय मान की संख्याएँ दी गई है, वे भास्कराचार्य कृत पाटीगणित 'लीलावती' से भिन्न हैं । लीलावती में कुल संख्याएँ अठारह हैं जिनके स्थानीय मान भी अठारह ही हैं । किन्तु बुन्देलखंड में स्थानीय मान और संख्याएँ दोनों ही उन्नीस उन्नीस मानी जाती थीं ।

प्रत्येक लेखे के नीचे, उनकी दसों संख्याओं के 'योग' दिये हुए हैं । इनका भी अपना उपयोग है । इन लेखों की, बायें से दायें और ऊपर से नीचे की दसों संख्याओं के योग में 'समानता' रहती है ।

'कौंचा' नामक 'लेखौ' मात्र स्व. पं. रामचरण गोस्वामी (ग्राम सिरसा) के कथन के आधार पर दिया गया है । अन्यथा लेखे केवल 'तेरह' ही होते है ।

(गिनती १ से १०० तक)

१	११	२१	३१	४१	५१	६१	७१	८१	९१	४६०
२	१२	२२	३२	४२	५२	६२	७३	८२	९२	४७०
३	१३	२३	३३	४३	५३	६३	७३	८३	९३	४८०
४	१४	२४	३४	४४	५४	६४	७४	८४	९४	490
५	१५	२५	३५	४५	५५	६५	७५	८५	९५	500
६	१६	२६	३६	४६	५६	६६	७६	८६	९६	510
७	१७	२७	३७	४७	५७	६७	७७	८७	९७	520
८	१८	२८	३८	४८	५८	६८	७८	८८	९८	530
९	१९	२९	३९	४९	५९	६९	७९	८९	९९	540
१०	२०	३०	४०	५०	६०	७०	८०	९०	१००	550
५५	१५५	२५५	३५५	४५५	५५५	६५५	७५५	८५५	९५५	५०५०

बुन्देली १९ संख्याओं के स्थानीय मान

स्थानीयमान	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८	१९
इकाई																			१
दहाई																		१	०
सैकड़ा																	१	०	०
हजार																१	०	०	०
दस हजार															१	०	०	०	०
लाख														१	०	०	०	०	०
दस लाख													१	०	०	०	०	०	०
करोड़												१	०	०	०	०	०	०	०
दस करोड़											१	०	०	०	०	०	०	०	०
अरब										१	०	०	०	०	०	०	०	०	०
दस अरब									१	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०
खरब								१	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०
दस खरब							१	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०
नील						१	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०
दस नील					१	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०
पदम				१	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०
दस पदम			१	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०
शंख		१	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०
दस शंख	१	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०

पहाड़े (२ से १० तक)

२	३	४	५	६	७	८	९	११
४	६	८	१०	१२	१४	१६	१८	२०
६	९	१२	१६	18	२१	२४	२७	३०
८	१२	१६	२०	२४	२८	३२	३६	४०
१०	१५	२०	२५	३०	३५	४०	४५	५०
१२	१८	२४	३०	३६	४२	४८	५४	६०
१४	२१	२८	३५	४२	४९	५६	६३	७०
१६	२४	३२	४०	४८	५६	६४	७२	८०
१८	२७	३६	४५	५४	६३	७२	८१	९०
२०	३०	४०	५०	६०	७०	८०	९०	१००
११०	१६५	२२०	२७५	३३०	३८५	४४०	४९५	५५०

पहाड़े (११ से २० तक)

११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८	१९	२०
२२	२४	२६	२८	३०	३२	३४	३६	३८	४०
३३	३६	३९	४२	४५	४८	५१	५४	५७	६०
४४	४८	५२	५६	६०	६४	६८	७२	७६	८०
५५	६०	६५	७०	७५	८०	८५	९०	९५	१००
६६	७२	७८	८४	९०	९६	१०२	१०८	११४	१२०
७७	८४	९१	९८	१०५	११२	११९	१२६	१३३	१४०
८८	९६	१०४	११२	१२०	१२८	१३६	१४४	१५२	१६०
९९	१०८	११७	१२६	१३५	१४४	१५३	१६२	१७१	१८०
११०	१२०	१३०	१४०	१५०	१६०	१७०	१८०	१९०	२००
६०५	६६०	७१५	७७०	८२५	८८०	९३५	९९०	१०४५	११००

पहाड़े (२१ से ३० तक)

२१	२२	२३	२४	२५	२६	२७	२८	२९	३०
४२	४४	४६	४८	५०	५२	५४	५६	५८	६०
६३	६६	६९	७२	७५	७८	८१	८४	८७	९०
८४	८८	९२	९६	१००	१०४	१०८	११२	११६	१२०
१०५	११०	११५	१२०	१२५	१३०	१३५	१४०	१४५	१५०
१२६	१३२	१३८	१४४	१५०	१५६	१६२	१६८	१७४	१८०
१४७	१५४	१६१	१६८	१७५	१८२	१८९	१९६	२०३	२१०
१६८	१७६	१८४	१९२	२००	१०८	२१६	२२४	२३२	२४०
१८९	१९८	२०७	२१६	२२५	२३४	२४३	२५२	२६१	२७०
२१०	२२०	२३०	२४०	२५०	260	२७०	२८०	२९०	३००
११५५	१२१०	१२६५	१३२०	१३७५	१४३०	१४८५	१५४०	१५९५	१६५०

(पहाड़े ३१ से ४० तक)

३१	३२	३३	३४	३५	३६	३७	३८	३९	४०
६२	६४	६६	६८	७०	७२	७४	७६	७८	८०
९३	९६	९९	१०२	१०५	१०८	१११	११४	११७	१२०
१२४	१२८	१३२	१३६	१४०	१४४	१४८	१५२	१५६	१६०
१५५	१६०	१६५	१७०	१७५	१८०	१८५	१९०	१९५	२००
१८६	१९२	१९८	२०४	२१०	२१६	२२२	२२८	२३४	२४०
२१७	२२४	२३१	२३८	२४५	२५२	२५९	२६६	२७३	२८०
२४८	२५६	२६४	२७२	२८०	२८८	२९६	३०४	३१२	३२०
२७९	२८८	२९७	३०६	३१५	३२४	३३३	३४२	३५१	३६०
३१०	३२०	३३०	३४०	३५०	३६०	३७०	380	३९०	४००
१७०५	१७६०	१८१५	१८७०	१९२५	१९८०	२०३५	२०९०	२१४५	२२००

पउआ (।)

।	२॥।	५।	७॥।	१०।	१२॥।	१५।	१७॥।	२०।	२०॥।
।।	३	५॥	८	१०॥	१५	१५॥	१८	२०॥	२३
।।।	३।	५॥।	८।	१०॥।	१३।	१५॥।	१८।	२०॥।	२३।
१	३॥	६	८॥	११	१३॥	१६	१८॥	२१	२३॥
१।	३॥।	६।	८॥।	११।	१३॥।	१६।	१८॥।	२१।	२३॥।
१॥	४	६॥	९	११॥	१४	१६॥	१९	२१॥	२४
१॥।	४।	६॥।	९।	११॥।	१४।	१६॥।	१९।	२१॥।	२४।
२	४॥	७	९॥	१२	१४॥	१७	१९॥	२२	२४॥
२।	४॥।	७।	९॥।	१२।	१४॥।	१७।	१९॥।	२२।	२४॥।
२॥	५	७॥	१०	१२॥	१५	१७॥	२०	२२॥	२५
१३॥।	३८॥।	६३॥।	८८॥।	११३॥	१३८॥।	१६३॥।	१८८॥।	२१३॥।	२३८॥।

अद्धा (।।)

।।	५॥	१०॥	१५॥	२०॥	२५॥	३०॥	३५॥	४०॥	४५॥
१	६	११	१६	२१	२६	३१	३६	४१	४६
१॥	६॥	११॥	१६॥	२१॥	२६॥	३१॥	३६॥	४१॥	४६॥
२	७	१२	१७	२२	२७	३२	३७	४२	४७
२॥	७॥	१२॥	१७॥	२२॥	२७॥	३२॥	३८॥	४२॥	४७॥
३	८	१३	१८	२३	२८	३३	३८	४३	४८
३॥	८॥	१३॥	१८॥	२३॥	२८॥	३३॥	३८॥	४३॥	४८॥
४	९	१४	१९	24	29	३४	३९	४४	४९
४॥	९॥	१४॥	१९॥	२४॥	२९॥	३४॥	३९॥	४४॥	४९॥
५	१०	१५	२०	२५	३०	३५	४०	४५	५०
३०	८०	१३०	१८०	२३०	२८०	३३०	३८०	४३०	४८०

पौना (।।।)

।।।	८।	१५।।।	२३।	३०।।।	३८।	४५।।।	५३।	६०।।।	६८।
१।।	९	१६।।	२४	३१।।	३९	४६।।	54	६१।।	६९
२।	९।।।	१७।	२४।।।	३२।	३९।।।	४७।	५४।।।	६२।	६९।।।
३	१०।।	१८	२५।।	३३	४०।।	४८	५५।।	६३	७०।।
३।।।	११।	१८।।।	२६।	३३।।।	४१।	४८।।।	५६।	६३।।।	७१।
४।।	१२	१९।।	२७	३४।।	४२	४९।।	५७	६४।।	७२
५।	१२।।।	२०।	२७।।।	३५।	४२।।।	५०।	५७।।।	६५।	७२।।।
६	१३।।	२१	२८।।	३६	४३।।	५१	५८।।	६६	७३।।
६।।।	१४।	२१।।।	२९।	३६।।।	४४।	५१।।।	५९।	६६।।।	७४।
७।।	१५	२२।।	३०	३७।।	४५	५२।।	६०	६७।।	७५
४11	११६।	१९१।	२६६।	३४१।	४१६।	४९१।	५६६।	६४१।	७१६।

सवइया (१।)

१।	१३।।।	२६।	३८।।।	५१।	६३।।।	७६।	८८।।।	१०१।	११३।।।
२।।	१५	२७।।	४०	५२।।	६५	७७।।	९०	१०२।।	११५
३।।।	१६।	२८।।।	४१।	५३।।।	६६।	७८।।।	९१।	१०३।।।	११६।
५	१७।।	३०	४२।।	५५	६७।।	८०	९२।।	१०५	११७।।
६।	१८।।।	३१।	४३।।।	५६।	६८।।।	८१।	९३।।।	१०६।	११८।।।
७।।	२०	३२।।	४५	५७।।	७०	८२।।	९५	१०७।।	१२०
८।।।	२१।	३३।।।	४६।	५८।।।	७१।	८३।।।	९६।	१०८।।।	१२१।
१०	२२।।	३५	४७।।	६०	७२।।	८५	९७।।	११०	१२२।।
११।	२३।।।	३६।	४८।।।	६१।	७३।।।	८६।	९८।।।	१११।	१२३।।।
१२।।	२५	३७।।	५०	६२।।	७५	८७।।	१००	११२।।	१२५
६८।।।	१९३।।।	३१८।।।	४४३।।।	५६८।।।	६९३।।।	८१८।।।	९४३।।।	१०६८।।।	११९३।।।

डयोढ़ा (१।।)

१।।	१६।।	३१।।	४६।।	६१।।	७६।।	९१।।	१०६।।	१२१।।	१३६।।
३	१८	३३	४८	६३	७८	९३	१०८	१२३	१३८
४।।	१९।।	३४।।	४९।।	६४।।	७९।।	९४।।	१०९।।	१२४।।	१३९।।
६	२१	३६	५१	६६	८१	९६	१११	१२६	१४१
७।।	२२।।	३६।।	५२।।	६७।।	८२।।	९७।।	११२।।	१२७।।	१४२।।
९	२४	३९	५४	६९	८४	९९	११४	१२९	१४४
१०।।	२५।।	४०।।	५५।।	७०।।	८५।।	१००।।	११५।।	१३०।।	१४५।।
१२	२७	४२	५७	७२	८७	१०२	११७	१३२	१४७
१३।।	२८।।	४३।।	५८।।	७३।।	८८।।	१०३।।	११८।।	१३३।।	१४८।।
१५	३०	४५	६०	७५	९०	१०५	१२०	१३५	१५०
८२।।	२३२।।	३८२।।	५३२।।	६८२।।	८३२।।	९.३।।	११३२।।	१२८२।।	१४३२।।

ढइया (२।।)

२।।	२७।।	५२।।	७७।।	१०२।।	१२७।।	१५२।।	१७७।।	२०२।।	२२७।।
५	३०	५५	८०	१०५	१३०	१५५	१८०	२०५	२३०
७।।	३२।।	५७।।	८२।।	१०७।।	१३२।।	१५७।।	१८२।।	२०७।।	२३२।।
१०	३५	६०	८५	११०	१३५	१६०	१८५	२१०	२३५
१२।।	३७।।	६२।।	८७।।	११२।।	१३७।।	१६२।।	१८७।।	२१२।।	२३७।।
१५	४०	६५	९०	११५	१४०	१६५	१९०	२१५	२४०
१७।।	४२।।	६७।।	९२।।	११७।।	१४२।।	१६७।।	१९२।।	२१७।।	२४२।।
२०	४५	७०	९५	१२०	१४५	१७०	१९५	२२०	२४५
२२।।	४७।।	७२।।	९७।।	१२२।।	१४७।।	१७२।।	१९७।।	२२२।।	२४७।।
२५	५०	७५	१००	१२५	१५०	१७५	२००	२२५	२५०
१३७।।	३६७।।	६३७।।	८८७।।	११३७।।	१३८७।।	१६३७।।	१८८७।।	२१३७।।	२३८७।।

हूँठा (३।।)

३।।	३८।।	७३।।	१०८।।	१४३।।	१७८।।	२१३।।	२४८।।	२८३।।	३१८।।
७	४२	७७	११२	१४७	१८२	२१७	२५२	२८७	३२२
१०।।	४५।।	८०।।	११५।।	१५०।।	१८५।।	२२०।।	२५५।।	२९०।।	३२५।।
१४	४९	८४	११९	१५४	१८९	२२४	२५९	२९४	३२९
१७।।	५२।।	८७।।	१२२।।	१५७।।	१९२।।	२२७।।	२६२।।	२९७।।	३३२।।
२१	५६	९१	१२६	१६१	१९६	२३१	२६६	३०१	३३६
२४।।	५९।।	९४।।	१२९।।	१६४।।	१९९।।	२३४।।	२६९।।	३०४।।	३३९।।
२८	६३	९८	१३३	१६८	२०३	२३८	२७३	३०८	३४३
३१।।	६६।।	१०१।।	१३६।।	१७२।।	२०६।।	२४१।।	२७६।।	३११।।	३४६।।
३५	७०	१०५	१४०	१७५	२१०	२४५	२८०	३१५	३५०
१८८।।	५४२।।	७८२।।	१२४२।।	१६०२।।	१८४२।।	२२९२।।	२६४२।।	२८९२।।	३३४२।।

ढौंचा (४।।)

४।।	४९।।	९४।।	१३९।।	१८४।।	२२९।।	२७४।।	३१९।।	३६४।।	४०९।।
९	५४	९९	१४४	१८९	२३४	२७९	३२४	३६९	४१४
१३।।	५८।।	१०३।।	१४८।।	१९३।।	२३८।।	२८३।।	३२८।।	३७३।।	४१८।।
१८	६३	१०८	१५३	१९८	२४३	२८८	३३३	३७८	४२३
२२।।	६७।।	११२।।	१५७।।	२०२।।	२४७।।	२९२।।	३३७।।	३८२।।	४२७।।
२७	७२	११७	१६२	२०७	२५२	२९७	३४२	३८७	४३२
३१।।	७६।।	१२१।।	१६६।।	२११।।	२५६।।	३०१।।	३४६।।	३९१।।	४३६।।
३६	८१	१२६	१७१	२१६	२६१	३०६	३५१	396	४४१
४०।।	८५।।	१३०।।	१७५।।	२२०।।	२६५।।	३१०।।	३५५।।	४००।।	४४५।।
४५	९०	१३५	१८०	२२५	२७०	३१५	३६०	४०५	४५०
२४७।।	६९७।।	११४७।।	१५९७।।	२०४७।।	२४९७।।	२४९७।।	३३९७।।	३८४७।।	४२९७।।

पौंचा (५।।)

५।।	६०।।	११५।।	१७०।।	२२५।।	२८०।।	३३५।।	३९०।।	४४५।।	५००।।
११	६६	१२१	१७६	२३१	२८६	३४१	३९६	४५१	५०६
१६।।	७१।।	१२६।।	१८१।।	२३६।।	२९१।।	३४६।।	४०१।।	४५६।।	५११।।
२२	७७	१३२	१८७	२४२	२९७	३५२	४०७	४६२	५१७
२७।।	८२।।	१३७।।	१९२।।	२४७।।	३०२।।	३५७।।	४१२।।	४६७।।	५२२।।
३३	८८	१४३	१९८	२५३	३०८	३६३	४१८	४७३	५२८
३८।।	९३।।	१४८।।	२०३।।	२५८।।	३१३।।	३६८।।	४२३।।	४७८।।	५३३।।
४४	९९	१५४	२०९	२६४	३१९	३७४	४२९	४८४	५३९
४९।।	१०४।।	१५९।।	२१४।।	२६९।।	३२४।।	३७९।।	४३४।।	४८९।।	५४४।।
५५	११०	१६५	२२०	२७५	३३०	३८५	४००	४९५	५५०
३०५	८५५	१४०५	१९५५	२२०५	३०५५	३६०५	४१५५	४७०५	५२५५

कौंचा (६।।)

६।।	७१।।	१३६।।	२०१।।	२६६।।	३३१।।	३९६।।	४६१।।	५२६।।	५९१।।
१३	७८	१४३	२०८	२७३	३३८	४०३	४६८	५३३	५९८
१९।।	८४।।	१४९।।	२१४।।	२७९।।	३४४।।	४०९।।	४७४।।	५३९।।	६०४।।
२६	९१	१५६	२२१	२८६	३५१	४१६	४८१	५४६	६११
३२।।	९७।।	१६२।।	२२७।।	२९२।।	३५७।।	४२२।।	४८७।।	५५२।।	६१७।।
३९	१०४	१६९	२३४	२९९	३६४	४२९	४९४	५५९	६२४
४५।।	११०।।	१७५।।	२४०।।	३०५।।	३७०।।	४३५।।	५००।।	५६५।।	६३०।।
५२	११७	१८२	२४७	३१२	३७७	४४२	५०७	५७२	६३७
५८।।	१२३।।	१८८।।	२५३।।	३१८।।	३८३।।	४४८।।	५१३।।	५७८।।	६४३।।
६५	१३०	१९५	२६०	३२५	३९०	४५५	५२०	५८५	६५०
३६०	१०१०	१६६०	२३१०	२९६०	३६१०	४२६०	४९१०	५५६०	६२१०

बड़ौ इकन्ना (१x१)

१ १२१	४४१	९६१	१६८१	२६०१	३७२१	५०४१	६५६१	८२८१
४ १४४	४८४	१०२४	१७६४	२७०४	३८४४	५१८४	६७२४	८४६४
९ १६९	५२९	१०८९	१८४९	२८०९	३९६९	५३२९	६८८९	८६४९
१६ १९६	५७६	११५६	१९३६	२९१६	४०९६	५४७६	७०५६	८८३६
२५ २२५	६२५	१२२५	२०२५	३०२५	४२२५	५५२५	७२२५	९०२५
३६ २५६	६७६	१२९६	२११६	३१३६	४३५६	५७७६	७३९६	९२१६
४९ २८९	७२९	१३६९	२२०९	३२४९	४४८९	५९२९	७५६९	९४०८
६४ ३२४	७८४	१४४४	२३०४	३३६४	४६२४	६०८४	७७४४	९६०४
८१ ३६१	८४१	१५२१	२४०१	३४८१	४७६१	६२४१	७९२१	९८०१
१००४००	९००	१६००	२५००	३६००	४९००	६४००	८१००	१००००
३८५२४८५	६७८५	१२६८५	२०७८५	३०८८५	४२९८५	५६९८५	७३१८५	९१२८५

विकट पहाड़ौ (11X11) प्रथम

१२१	१३२	१४३	१५४	१६५	१७६	१८७	१९८	२०९	२२०
१३२	१४४	१५६	१६८	१८०	१९२	२०४	२१६	२२८	२४०
१४३	१५६	१६९	१८२	१९५	२०८	२२१	२३४	२४७	२६०
१५४	१६८	१८२	१९६	२१०	२२४	२२८	२५२	२६६	२८०
१६५	१८०	१९५	२१०	२२५	२४०	२५५	२७०	२८५	३००
१७६	१९२	२०८	२२४	२४०	२५६	२७२	२८८	३०४	३२०
१८७	२०४	२२१	२३८	२५५	२७२	२८९	३०६	३३३	340
१९८	२१६	२३४	२५२	२७७	288	३०६	३२४	३४२	३६०
२०९	२२८	२४७	२६६	२८५	३०४	३२३	३४२	३६१	३८०
२२०	२४०	२६०	२८०	३००	३२०	३४०	३६०	३८०	४००
१७०५	१८६०	२०१५	२१६०	२१२५	२४८०	२६१५	२७९०	२९५५	३१००

विकट पहाड़ौ (१।। का डेढ़) (द्वितीय)

		ड़योढ	ढाम	हूँठ	ढौंच	पौंच
ड़योढा	का	२।	३।।।	५।	६।।।	८।
ढइया	का	३।।।	६।	८।।।	११।	१३।।।
हूँठा	का	५।	८।।।	१२।	१५।।।	१९।
ढौंचा	का	६।।।	११।	१५।।।	२०।	२४।।।
पौंचा	का	८।	१३।।।	१९।	२४।।।	३०।

कातन्त्र व्याकरण-सूत्रपाठ:

प्रथमोऽध्याय:

सिद्धो वर्णसमाम्नाय: ॥ ।१।१।१॥
तत्र चतुर्दशादौ स्वरा: ॥ ।१। १। २ ॥
दश समाना: ॥ १ । १ । ३ ॥
तेषां द्वौ द्वावन्योन्यस्य सवर्णौ ॥ १ । १ । ४ ॥
पूर्वो ह्रस्व: ॥ १ । १ । ५ ॥
परो दीर्घ: ॥ १ । १ । ६ ॥
स्वरोऽवर्ण वर्जो नामी ॥ १ । १ । ७ ॥
एकारादीनि सन्ध्यक्षराणि ॥ १ । १ । ८ ॥
कादीनिव्यञ्जनानि ॥ १ । १ । ९ ॥
ते वर्गा: पञ्च-पञ्च-पञ्च ॥ १ । १ । १० ॥
वर्गाणां प्रथम-द्वितीया: शषसा श्चाघोषा: ॥ १ । १ । ११ ॥
घोषन्तोऽन्ये ॥ १। १। १२॥
अनुनासिका ङ ञ ण न मा: ॥ १। १। १३॥
अन्त:स्था यरलवा: ॥ १। १। १४॥
ऊष्माण : श ष स हा : १। १। १५॥
अ: इति विसर्जनीय : १। १। १६॥
ङ्क क इति जिह्वामूलीय: ॥ १। १। १७॥
ङ्प इत्युपध्मानीय : ॥ १। १। १८॥
अं इत्यनुस्वार: ॥ १। १। १९॥

पूर्वपरयोरर्थोपलब्धौ पदम् ॥ १। १। २०॥
व्यञ्जनमस्वरं परं वर्णं नयेत् ॥ १। १। २१॥
अनतिक्रमयन् विश्लेषयेत् ॥ १। १। २२॥
लोकोपचाराद् ग्रहणसिद्धि ॥ १। १। २३॥
॥ इतिप्रथम:पाद:॥

प्रथमेऽध्याये द्वितीयः पाद :

समानः सवर्णे दीर्घी भवति परश्चलोपम् ॥ १। २। १॥
अवर्ण इवर्णे ए ॥ १। २। २॥
उवर्णे ओ ॥ १। २। ३॥
ऋवर्णे अर ॥ १। २। ४॥
ऌवर्णे अल् ॥ १। २। ५॥
एकारे ऐ ऐकारे च ॥ १। २। ६॥
ओकारे औ औकारे च ॥ १। २। ७॥
इवर्णो यम सवर्णे न च परो लोच्य : ॥ १। २। ८॥
वमुवर्णः ॥ १। २। ९॥
रमृवर्णः ॥ १। २। १०॥
लम्ऌवर्णः ॥ १। २। ११॥
ए अय् ॥ १। २। १२॥
ऐ आय् ॥ १। २। १३॥
ओ अव् ॥ १। २। १४॥
औ आव् ॥ १। २। १५॥
अयादीनां य - वलोप : पदान्ते न वा लोपे तु प्रकृतिः ॥ १। २। १६॥
एदोत्परः पदान्ते लोपमकारः ॥ १। २। १७॥
न व्यञ्जने स्वराः संधेयाः ॥ १। २। १८॥
॥ इति द्वितीयः पादः ॥

प्रथमेऽध्याये तृतीयः पादः

ओदन्ता अ इ उ आ निपाताः स्वरे प्रकृत्या ॥ १। ३। १॥

द्विवचनमनौ ॥ १। ३। २॥
बहुवचनममी ॥ १। ३। ३॥
अनुपदिष्टाश्च ॥ १। ३। ४॥
॥ इति तृतीयः पादः ॥

प्रथमेऽध्याये चतुर्थः पादः

वर्गप्रथमाः पदान्ताः स्वरघोषवत्सु तृतीयान् ॥ १। ४। १॥
पञ्चमे पञ्चमांस्तृतीयान्न वा ॥ १। ४। २॥
वर्ग प्रथमेभ्यः शकारः स्वर य व र परश्छकारं न वा ॥ १। ४। ३॥
तेभ्य एव हकारः पूर्व चतुर्थ न वा ॥ १। ४। ४॥
पररूपं तकारोल चट वर्गेषु ॥ १। ४। ५॥
चं शे ॥ १। ४। ६॥
ङ ण ना ह्रस्वोपधाः स्वरे द्विः ॥ १। ४। ७॥
नोऽन्तश्च छयोः शकारमनुस्वार पूर्वम् ॥ १। ४। ८॥
ट ठ योः षकारम् ॥ १। ४। ९॥
त थ योः सकारम् ॥ १। ४। १०॥
ले लम् ॥ १। ४। ११॥
ज झ ञ शकारेषु ञकारम् ॥ १। ४। १२॥
शिन्चौ वा ॥ १। ४। १३॥
ड ढ ण परस्तुणकारम् ॥ १। ४। १४॥
मोऽनुस्वारं व्यञ्जने ॥ १। ४। १५॥
वर्गे तद्वर्ग पञ्चमं वा ॥ १। ४। १६॥
॥ इति चतुर्थः पादः॥

लेखन-सामग्री

पुरानी-परिपाटी में लेखन के लिए निम्नलिखित 'उपकरणों' (सामग्री) का उपयोग होता था -

पाटी-यह 'इमारती लकड़ी' (नीम-आम-शीशम इत्यादि) का एक आयताकार पटिया होता था जिसकी मोटाई लगभग आधा इंच, लम्बाई एक हाथ लगभग अठारह इंच और चौड़ाई लगभग आठ या नौ इंच रहती थी। चौड़ाई वाले एक सिरे पर एक त्रिभुज सा बना रहता था जो 'पाटी' को पकड़ने या टाँगने के काम आता था। इस पाटी पर दीपक की कालिख या कोयले का बारीक चूर्ण पोत दिया जाता था। फिर इस पर खड़िया मिट्टी या गौरा पत्थर के टुकड़े से लिखते थे।'

पोता- यह पुराने कपड़े का टुकड़ा होता था जो पाटी पर लिखते हुए को 'मिटाने के काम आता था। उसे प्रायः पानी में भींगा हुआ रखते थे।

कागद- बुन्देली में कागज को 'कागद' कहते हैं। कागद प्रायः फटे चीथड़े कपड़ों को गलाकर बनाया जाता था। बुन्देल-खण्ड की लगभग सभी बड़ी रियासतों में कागद बनाने के कारखाने थे जिनमें कालपी और छतरपुर के कागद विशेष लोकप्रिय थे। इन कागदों को सूते की डोरी से जिल्द बाँधकर रखते थे और ऊपर से कोई सुंदर सा देशी कपड़ा चढ़ा कर रखते थे।

कलम- कलम अर्थात् लेखनी लगभग बारह अँगुल लम्बी 'सरकण्डे' की पुंगी होती थी जिसके एक सिरे को चाकू से तिरछा काटकर, उसकी नोंक निकालकर रखते थे। यह नोंक भी तिरछी रखी जाती थी ताकि अक्षरों की बनावट सुन्दर तथा एकसी रहे।

मसि या स्याही- स्याही प्राय: घर पर ही तैयार की जाती थी। यह दो प्रकार की होती थी। लाल स्याही से कागद पर दोहरा हाशिया खींचा जाता था और श्रीगणेशाय नम: मंगलाचरण तथा पुष्पिका लिखी जाती थी। वाक्यों के अन्त में दोहरी खड़ी पाई भी लाल स्याही से लगायी जाती थी। 'लाल स्याही' ईंगुर को पानी में घोलने से बन जाती थी। 'काली स्याही' अत्यधिक-परिश्रम के द्वारा तैयार होती थी। दतिया के परम्परागत औषधि विक्रेता वैद्य श्री रघुवीरदास कनकने के अनुसार काली स्याही बनाने का एक 'गुर' पढ़ाया जाता था।

खैर सुहागा कारौ बोर। लै लोहौ लोहे सें घोर॥
तनक रंग घमरा को भरै। कागद सरै, न स्याही गरै॥

तदनुसार खैर (कत्था), सुहागा, कारौबोर (एलुआ) को समान मात्रा में लेकर लोहे की कड़ाही में डालकर पानी में घोलते थे फिर उसमें थोड़ा सा 'घमरा' (भृंगराज) डाल कर समूचे घोल को प्रतिदिन कई घण्टे के हिसाब से लोहे के बट्टे या मूसल से घोंटते थे। इस प्रकार एक-दो मास में इस प्रकार की स्याही तैयार हो जाती थी जो बाद में किसी भी 'द्रव' से न गलती थी। कागद चाहे गल जाये- यह स्याही नहीं गलती थी। यदि लेखन में कुछ गलत लिख जाता था तो उस गलत लिखे को मिटाते नहीं थे बल्कि 'हरताल' के घोल को उस पर पोत देते थे जिससे गलत लिखा हुआ दब जाता था।

बसना- देशी कपड़े या 'छाँटी' के लगभग दो दो हाथ चौड़े, चौकोर टुकड़े के एक सिरे पर सूत की डोरी बाँध ली जाती थी। इसे 'बसना' कहते थे। इसमें पोथियों को लपेट कर रखते थे।

सन्दर्भ

1. अमरकोश (माहेश्वरी टीका)।
2. एकाक्षर नाम कोष संग्रह: राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर (सन् 1964 ई.)।
3. ग्यारहवीं सदी का भारत-डॉ. जयशंकर मिश्र, भारतीय विद्या प्रकाशन, वाराणसी सन् 1968 ई.।
4. चौंतीसी- (हस्तलिपि) लाला बाजूराइ, दलीपनगर संवत् 1890 विक्रमी।
5. पाटी चरनाइके- (हस्तलिपि) प्रधान रामचन्द्र कुडरा, दलीप नगर (दतिया) संवत् 1890 विक्रमी।
6. बालशिक्षा- संग्राम सिंह ठक्कुर (संवत् 1336) राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर (सन् 1968 ई.)।
7. भारतवर्ष का अंधकार युगीन इतिहास- डॉ. काशीप्रसाद जायसवाल (नागरी प्रचारिणी सभा काशी सं. 2014)।
8. लघु चरनाइके (वेदमुनि)।
9. लघु सिद्धान्त कौमुदी -पं. ज्वालाप्रसाद मिश्र की टीका (वेंकटेश्वर प्रेस बम्बई संवत् 1961 वि.)।
10. लीलावती (भाषा)-रायचंद मुंशी, नवल किशोर प्रेस, सन् 1915 ई.।
11. वृद्ध चानिक्य राजनीतिशास्त्र (हस्तलिपि संवत् 1803 लिपिकार अज्ञात।
12. वेद का स्वयंशिक्षक, श्रीपाद दामोदर सातवलेकर, प्रथम-द्वितीय भाग- स्वाध्याय मंडल सौंध, सतारा।
13. वैदिक व्याकरण - डॉ. उमेशचंद्र पाण्डेय, विद्या भवन, राष्ट्रभाषा ग्रंथमाला-37, वाराणसी सन् 1993।
14. व्याकरण शास्त्र का संक्षिप्त इतिहास- रमाकांत मिश्र, विद्याभवन, राष्ट्रभाषा ग्रंथमाला-106, वाराणसी।
15. संस्कृत रूपमाला (संधिभाग) शिवदत्तशर्मा, लक्ष्मी वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई संवत् 1986 वि.।
16. संस्कृत वाङ मय परिचय- मधुसूदन प्रसाद मिश्र वाराणसी सन् 1955 ई.।
17. संक्षिप्त हिन्दी शब्दसागर- नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।
18. चाणक्य नीति दर्पण-भाषा टीका, पं. हरिशंकर, मुंशी नवल किशोर प्रेस, लखनऊ सन् 1900 ई.।
19. सारस्वत व्याकरण-भाषानुवाद पं. ज्वालाप्रसाद।
20. नवीन व्यापार गणित (द्वितीय भाग) पी.सी. द्वादश श्रेणी एण्ड कंपनी अलीगढ़ (-1935)
21. अंकगणित प्रथम भाग (यादव चन्द्र चक्रवर्ती एम.ए.सी. द्वादश श्रेणी एण्ड कंपनी अलीगढ़ सन्)1935 (सौजन्य श्री सुरेशा चंद्र श्रीवास्तव)